यज्ञोपवीत-वेदारम्भ-समावर्तन-संस्कार

सम्पादक
प्रो. राममूर्ति शर्मा

लेखक
डॉ. राममूर्ति चतुर्वेदी

सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी

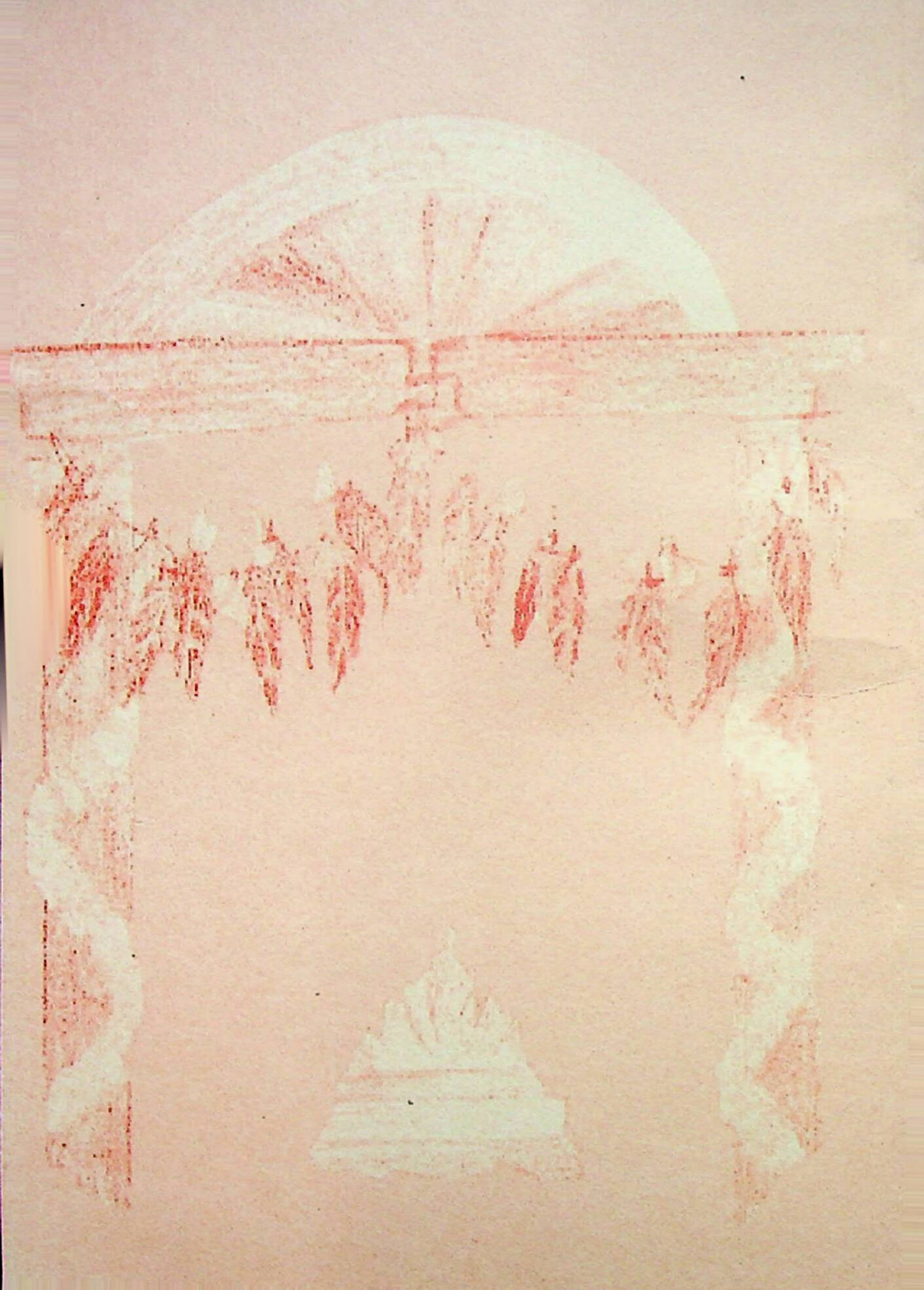

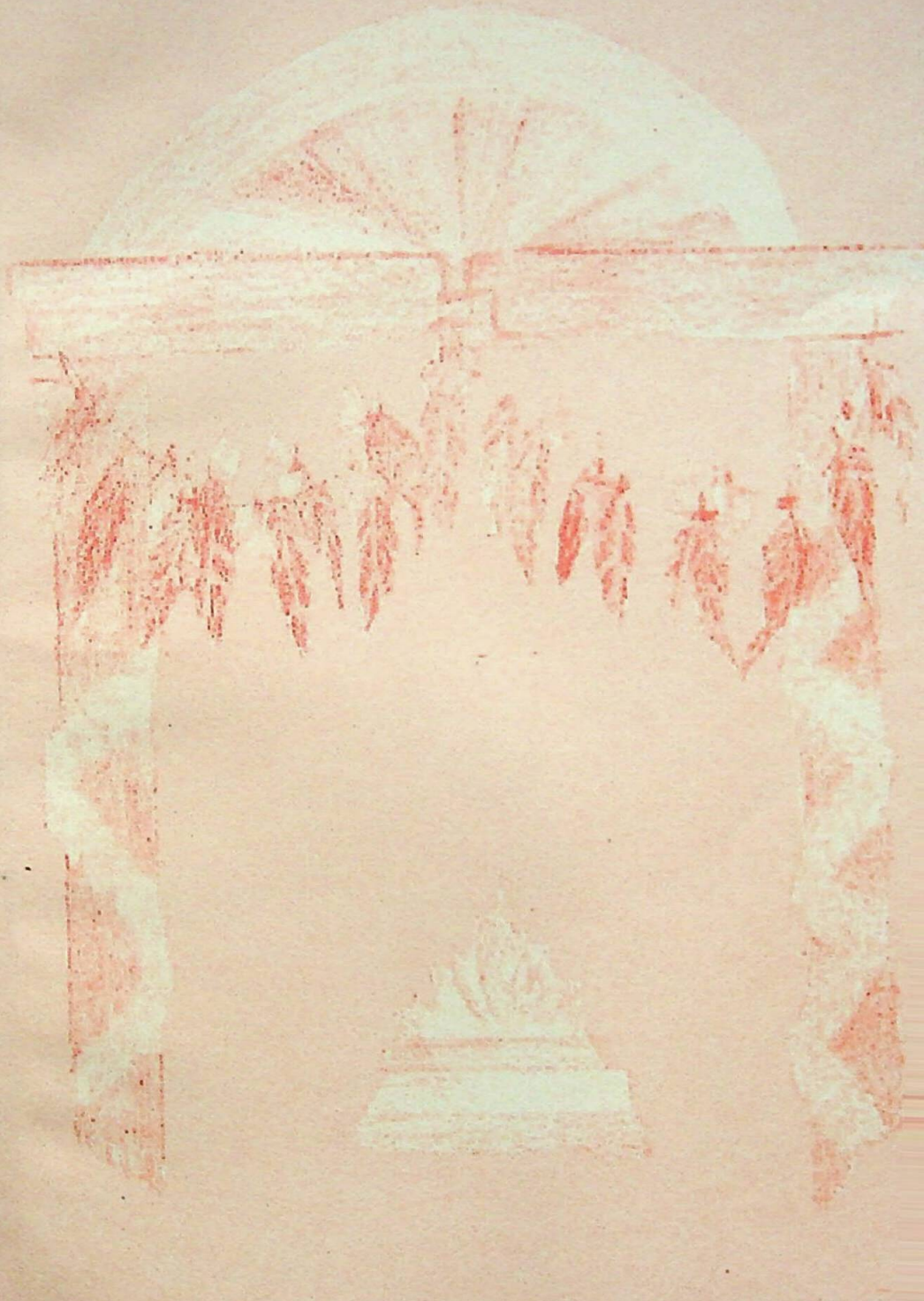

संस्कार-ग्रन्थमाला
[अष्टम पुष्प]

यज्ञोपवीत-वेदारम्भ-समावर्त्तन-संस्कार

[पूजा-विधि-सहित]

सम्पादक
प्रो. राममूर्ति शर्मा
कुलपति
सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय
वाराणसी

लेखक
डॉ. राममूर्ति चतुर्वेदी
प्राध्यापक, वेद-विभाग
सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय
वाराणसी

वाराणसी
२०५८ वैक्रमाब्द १९२३ शकाब्द २००१ ख्रैस्ताब्द

अनुसन्धान - प्रकाशन - पर्यवेक्षक —
निदेशक, अनुसन्धान-संस्थान
सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय
वाराणसी।

❐

प्रकाशक—
डॉ. हरिश्चन्द्र मणि त्रिपाठी
निदेशक, प्रकाशन-संस्थान
सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय
वाराणसी-२२१००२

❐

प्राप्ति-स्थान —
विक्रय-विभाग,
सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय
वाराणसी-२२१००२

❐

प्रथम संस्करण – १००० प्रतियाँ

अष्टम पुष्प की एक प्रति का **मूल्य** – ४०.०० रूपये (पेपरबैक में)

संस्कार-ग्रन्थमाला के प्रथम पुष्प से दशम पुष्प तक के पूरे सेट का **मूल्य** – ३००.०० रूपये (पेपरबैक में)

❐

मुद्रक —
श्रीजी कम्प्यूटर प्रिण्टर्स
नाटी इमली, वाराणसी-२२१००१

ISBN : 81-7270-065-2

पुरोवाक्

कर्मकाण्ड भारतीय जीवन का प्रधान अङ्ग है। कर्मकाण्ड के अन्तर्गत भी गर्भाधान आदि संस्कार मानव के आद्योपान्त निर्माण एवं उसकी सद्गति के साधक हैं। भारतवर्ष में ग्रामों से लेकर महानगरों तक ये संस्कार सम्पन्न होते देखे जाते हैं; किन्तु प्रायः यह दृष्टिगत होता है, कि ग्रामों में ही क्या नगरों में भी, प्रायः ये संस्कार सम्यक् रूप से सम्पन्न नहीं होते। स्वभावतः, ग्रामों की स्थिति, नगरों की अपेक्षा, इस सम्बन्ध में अधिक शोचनीय है। इसका कारण यही है, कि ग्रामों में सम्यगधीत कर्मकाण्डी विद्वान् नहीं उपलब्ध हो पाते। इसका परिणाम यह होता है, कि कभी-कभी अधीत यजमान की कर्मकाण्ड एवं तथाकथित कर्मकाण्डी में अनास्था, अश्रद्धा हो जाती है। हमारे माननीय उच्च-शिक्षा मन्त्री **श्री ओमप्रकाश सिंह जी** ने जो उच्च-शिक्षा के क्षेत्र में अपेक्षित परिवर्तन एवं परिष्कार के लिए कटिबद्ध हैं तथा अपने प्रयत्नों में पूर्णतया सफल हुए हैं, हमारा ध्यान कर्मकाण्डगत उक्त समस्या की ओर आकृष्ट कराते हुए, भारतीय संस्कारों की ऐसी लघु एवं सरल पुस्तिकाओं की रचना का परामर्श दिया, जिनके द्वारा सामान्य पढ़ा-लिखा व्यक्ति भी संस्कारों को सम्पन्न कर सके। इस कार्य को सम्पन्न करने में, मुझे अपने अध्यापकों से पूर्ण सहयोग मिला है। एतदर्थ मैं अपने इन साथियों, प्रो. युगलकिशोर मिश्र, डॉ. कुञ्जबिहारी शर्मा, डॉ. राममूर्ति चतुर्वेदी, डॉ. महेन्द्र पाण्डेय, डॉ. कमलाकान्त त्रिपाठी, डॉ. पतञ्जलि मिश्र एवं डॉ. जयप्रकाश पाण्डेय को साधुवाद देता हूँ, तथा आशा करता हूँ,

कि इन लघु पुस्तिकाओं से संस्कारों के सम्पन्न करने-कराने में सुगमता होगी, तथा लोगों की कर्मकाण्ड में श्रद्धा-आस्था की वृद्धि होगी।

प्रस्तुत कार्य को सम्पन्न करने में, निदेशक, प्रकाशन-संस्थान, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, डॉ. हरिश्चन्द्र मणि त्रिपाठी का सहयोग भी स्तुत्य है, जिन्होंने यथासमय एवं यथापेक्षित रूप में संस्कारसम्बन्धी इन लघु पुस्तिकाओं का प्रकाशन सम्पन्न किया है। अथ च इन ग्रन्थों के मुद्रक श्री अनूप कुमार नागर, सञ्चालक श्रीजी कम्प्यूटर्स भी प्रशंसा के भाजन हैं, जो सदैव हमारे मुद्रण कार्य को निष्ठा एवं तत्परता के साथ सम्पन्न करते हैं।

राममूर्ति शर्मा

वाराणसी
मातृनवमी,
वि. सं. २०५८

राममूर्ति शर्मा
कुलपति
सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय

प्रकाशकीय

सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय की प्रकाशन-ग्रन्थमालाओं ने प्राच्य भारतीय विद्याओं की प्राय: समस्त शाखाओं को अभिव्याप्त किया है। इस विश्वविद्यालय के द्वारा माननीय कुलपति **प्रो.राममूर्ति शर्मा जी** की प्रेरणा से एक नयी ग्रन्थमाला **'संस्कार-ग्रन्थमाला'** का प्रवर्तन हुआ है। इस संस्कार-ग्रन्थमाला में हिन्दू-संस्कारों से सम्बन्धित निम्नलिखित दस पुस्तकें सम्प्रति प्रकाशित हो रही हैं—

१. शिलान्यास एवं वास्तुपूजन-पद्धति	प्रो. युगलकिशोर मिश्र
२. गर्भाधान-पुंसवन-सीमन्तोन्नयन-संस्कार	डॉ. कमलाकान्त त्रिपाठी
३. जातकर्म-संस्कार	डॉ. जयप्रकाश पाण्डेय
४. नामकरण-संस्कार	डॉ. कुञ्जबिहारी शर्मा
५. अन्नप्राशन-संस्कार	डॉ. कुञ्जबिहारी शर्मा
६. चूडाकरण-संस्कार	डॉ. महेन्द्र पाण्डेय
७. कर्णवेध-संस्कार	डॉ. महेन्द्र पाण्डेय
८. यज्ञोपवीत-वेदारम्भ-समावर्तन-संस्कार	डॉ. राममूर्ति चतुर्वेदी
९. केशान्त-संस्कार	डॉ. महेन्द्र पाण्डेय
१०. विवाह-संस्कार	डॉ. पतञ्जलि मिश्र

संस्कारों के विषय में गृह्यसूत्रों, धर्मसूत्रों, मनुस्मृति, याज्ञवल्क्य-स्मृति तथा अन्य स्मृतियों में सामग्रियाँ पुष्कल मात्रा में उपलब्ध हैं। साथ ही रघुनन्दन के संस्कारतत्त्व, नीलकण्ठ के संस्कारमयूख, मित्रमिश्र के संस्कारप्रकाश, अनन्तदेव के संस्कार-कौस्तुभ एवं गोपीनाथ के संस्काररत्नमाला नामक निबन्ध-ग्रन्थों में भी प्रचुर मात्रा में सामग्री भरी पड़ी है। स्मृतिकारों में संस्कारों की संख्या पर भी पर्याप्त मतभेद है। महर्षि गौतम के मत से चालीस संस्कार होते हैं। महर्षि अङ्गिरा ने पच्चीस संस्कारों की बात कही है। व्यास-स्मृति में सोलह संस्कार गिनाये गये हैं। यथा—

गर्भाधानं पुंसवनं सीमन्तो जातकर्म च।
नामक्रियानिष्क्रमणान्नप्राशनं वपनक्रिया॥

कर्णवेधो व्रतादेशो वेदारम्भक्रियाविधिः ।
केशान्तः स्नानमुद्वाहो विवाहाग्निपरिग्रहः ॥
त्रेताग्निसङ्ग्रहश्चेति संस्काराः षोडश स्मृताः ॥

लोक में प्रायः ये ही सोलह संस्कार प्रचलित हैं। इन्हीं सोलह संस्कारों से कल्याण-परम्पराओं का भोक्ता मानव शरीर ब्रह्मत्वप्राप्ति की अर्हता प्राप्त करता है। भगवान् मनु ने इस तथ्य को निम्नलिखित श्लोक में प्रतिपादित किया है—

स्वाध्यायेन व्रतैर्होमैस्त्रैविद्येनेज्यया सुतैः ।
महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः ॥

स्थान एवं काल-भेद से विश्व स्तर पर संस्कार-भेद परिलक्षित होते हैं। वस्तुतः संस्कारों की परिधि में मानवमात्र परिवेष्टित है। मानव मन एवं शरीर पर संस्कारों का प्रभाव बहु-आयामी होता है। भारतीय संस्कार मनुष्य को पवित्र तो करते ही हैं, साथ ही उसे विभूषित भी करते हैं। इस तथ्य का उन्मीलन महाकवि कालिदास ने कुमारसम्भव महाकाव्य में बड़े मार्मिक शब्दों में किया है—

प्रभामहत्या शिखयेव दीपः
त्रिमार्गयेव त्रिदिवस्य मार्गः।
संस्कारवत्येव गिरा मनीषी
तया स पूतश्च विभूषितश्च ॥ (कुमा. १।२८)

अर्थात् जिस प्रकार प्रभा की स्निग्धता एवं देदीप्यमान आलोक से दीपशिखा पवित्र और विभूषित होती है, स्वर्गङ्गा से जिस प्रकार स्वर्गलोक पवित्र एवं विभूषित होता है, जिस प्रकार संस्कार वाली वाणी से मनीषी व्यक्ति पवित्र एवं विभूषित होता है, उसी प्रकार कन्या पार्वती से उनके पिता हिमालय पवित्र एवं विभूषित हुए।

१७ जुलाई, १९९९ की तिथि हठात् स्मृति-पटल पर आवृत हो रही है, जब हम लोग माननीय कुलपति **प्रो. राममूर्ति शर्मा जी** के नेतृत्व में भारत के उपराष्ट्रपति महामहिम **डॉ. कृष्णकान्त जी** के उपराष्ट्रपति-

भवन पर उन्हें विश्वविद्यालय के कतिपय महनीय प्रकाशनों को उपहार-स्वरूप प्रदान करने के लिए पहुँचे थे। हमारे माननीय कुलपति **प्रो. राममूर्ति शर्मा जी** ने विश्वविद्यालय के महनीय प्रकाशनों को महामहिम उपराष्ट्रपति जी के करकमलों में उपहृत करते हुए उन ग्रन्थों की विशेषताएँ निरूपित की थीं। महामहिम ने उपहारस्वरूप प्राप्त पुस्तकों को सहर्ष अङ्गीकार करते हुए कुलपति प्रो. राममूर्ति शर्मा जी से आग्रह किया था कि आपके प्रकाशनों को देखकर मैं अत्यन्त हर्षित हुआ हूँ और आप से एक विशेष आग्रह कर रहा हूँ कि भारतीय संस्कारों से सम्बन्धित पुस्तकों के प्रकाशन की ओर आपका विशेष ध्यान जाना चाहिए। महामहिम उपराष्ट्रपति जी की सदिच्छा की अनुगूँज २० अप्रैल, २००१ के दीक्षान्त-महोत्सव के अवसर पर उत्तर-प्रदेश के उच्च-शिक्षा-मन्त्री **डॉ. ओम प्रकाश सिंह जी** के दीक्षान्त भाषण में प्रतिध्वनित हुई। डॉ. सिंह जी ने हिन्दू-संस्कारों के अनुष्ठान में दिनानुदिन हो रहे ह्रास की ओर विद्वानों का ध्यान आकृष्ट कराते हुए यह आह्वान किया था कि भारतीय-समाज अपने संस्कारों के अनुष्ठान के बल पर सहस्राब्दियों से शक्ति, स्फूर्ति एवं जीवन में नावीन्य प्राप्त करता रहा है और हमारे संस्कार हमारे जीवन में **'नवो नवो भवति जायमानः'** का सन्देश देते हुए राष्ट्रीय एकता की भी प्रबल कड़ी रहे हैं। अतः मैं सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के विद्वानों से प्रबल आग्रह कर रहा हूँ कि सामाजिक जीवन में नवनवोन्मेष का आधान करने वाले हिन्दू-संस्कारों की शुद्धता, पवित्रता तथा लोक-कल्याण की भावना को अक्षुण्ण रखने का हर सम्भव प्रयास किया जाय।

इस प्रकार महामहिम उपराष्ट्रपति जी एवं माननीय उत्तर-प्रदेश के उच्च-शिक्षा-मन्त्री जी के उद्‌बोधनों को साकार करने के लिए विश्वविद्यालय के मनीषी कुलपति **प्रो. राममूर्ति शर्मा** जी ने अभियान चलाकर पारङ्गत धर्मशास्त्रीय विद्वानों के द्वारा विभिन्न हिन्दू-संस्कारों पर पुस्तकें लिखवायीं और उनके शीघ्रातिशीघ्र प्रकाशन हेतु निरन्तर प्रेरणा देते रहे। फलस्वरूप सम्प्रति हिन्दू-संस्कारों से सम्बन्धित दस पुस्तकें प्रकाशित हो रही हैं; जिनमें तेरह संस्कार समाविष्ट हैं।

अतः मैं यहाँ हिन्दू-संस्कारों की शुद्धता, शुचिता एवं पवित्रता के प्रति सतत जागरूक भारत के उपराष्ट्रपति महामहिम **डॉ. कृष्णकान्त जी**

एवं उत्तर-प्रदेश के माननीय उच्च-शिक्षा-मन्त्री **डॉ. ओम प्रकाश सिंह जी** के प्रति हार्दिक आभार प्रकट करता हूँ, जिन्होंने इस महनीय सांस्कारिक-कार्य के लिए प्रेरणा-स्रोत की भूमिका निभायी है। वस्तुत: स्वल्पातिस्वल्प समय में हिन्दू-संस्कारों की दस पुस्तकों का प्रकाशन हमारे मनीषी कुलपति **प्रो. राममूर्ति शर्मा जी** की प्रेरणा, अध्यवसाय एवं नित्योत्साह प्रदान करने से सम्भव हो सका है। अत: मैं यहाँ मनीषी कुलपति **प्रो. राममूर्ति शर्मा जी** के प्रति हार्दिक कृतज्ञता एवं प्रणाम निवेदित करता हूँ।

यहाँ मैं विभिन्न हिन्दू-संस्कारों पर स्वल्प समय में आधिकारिक ग्रन्थ लिखने वाले मनीषी विद्वानों के प्रति शिरसा आभार प्रकट करता हूँ, जिन्होंने माननीय कुलपति महोदय की प्रेरणा से इन ग्रन्थों का लेखन सम्पन्न किया है।

इस अनुष्ठान में लगे हुए प्रकाशन-संस्थान के ईक्ष्यशोधनप्रवीण **डॉ. हरिवंश कुमार पाण्डेय,** सहायक सम्पादक **डॉ. ददन उपाध्याय,** ईक्ष्यशोधक **श्री अशोक कुमार शुक्ल, श्री अतुल कुमार भाटिया,** प्रकाशन सहायक **श्री कन्हई सिंह कुशवाहा** तथा **श्री ओम प्रकाश वर्मा** को भूरिश: धन्यवाद प्रदान करता हूँ, जिन्होंने रात्रिंदिवं इस कार्य की सम्पन्नता में अपना सहयोग प्रदान किया है। इन पुस्तकों के मुद्रक **श्री अनूप कुमार नागर** को हार्दिक धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकता, जिन्होंने इन पुस्तकों को निर्धारित समय में मुद्रित करने में अपनी बहुज्ञता, तत्परता तथा कौशल दिखाया है।

भारतीय समाज को सहस्राब्दियों से संस्कारित करने वाले संस्कारों की इन पुस्तकों को सान्नपूर्णा भगवान् श्री विश्वेश्वर के कर-कमलों में समर्पित करता हूँ।

विद्वत्कृपाकांक्षी

हरिश्चन्द्र मणि त्रिपाठी
निदेशक, प्रकाशन-संस्थान
सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय

वाराणसी
भाद्रशुक्ल-द्वादशी (वामन-द्वादशी)
२०५८ वि. संवत्

विषय-सूची

यज्ञोपवीत-संस्कार का वैधानिक अनुशीलन **१-१९**

१. संस्कारों के फल १-२
२. यज्ञोपवीत-संस्कार के नाम २
३. अनादिष्ट-प्रायश्चित्त-विधि २-३
४. काम्य-विशेषोपनयन काल ३
५. उपनयन-संस्कार के आचार्य ३-५
६. उपनयन में शिखा-धारण का महत्त्व ५-६
७. शिखा-धारण का आध्यात्मिक रहस्य ६-७
८. यज्ञोपवीत का सूक्ष्म रहस्य ७-१०
९. उपनयन-संस्कार की संक्षिप्त विधि १०-१२
१०. गायत्री-मन्त्र-दीक्षा १२-१३
११. वेदारम्भ-संस्कार-विवेचन १४-१६
१२. समावर्तन-संस्कार एवं गृहस्थ जीवन १७-१९

यज्ञोपवीत-वेदारम्भ-समावर्तन-प्रयोग-विधि **२०-६८**

१३. हिन्दी-मन्त्रार्थसहित यज्ञोपवीत-संस्कार-प्रयोग २०-२३
१४. पञ्चभू-संस्कार-विधि २३-२५
१५. यज्ञोपवीतधारण-विधि २५-३२
१६. कुशकण्डिका-विधि ३२-३५
१७. हवन-विधि ३५-३८
१८. गायत्री-दीक्षा ३८-४०
१९. अग्नि-परिचर्या ४०-४३

२०. भिक्षाचरण ४३-४४
२१. ब्रह्मचर्य-नियम ४४-४५

वेदारम्भ-संस्कार-प्रयोग ४६-५१

२२. अग्निस्थापन-विधि ४६-४७
२३. हवन-विधि ४७-५०
२४. वेदारम्भ-विधि ५०-५१

समावर्तन-संस्कार-प्रयोग ५२-६८

२५. संस्कार-विधि ५२-५३
२६. होम-विधि ५३-५६
२७. अग्नि-परिचर्या ५६-५८
२८. अभिषेक-विधि ५८-६२
२९. वस्त्रालङ्कारादिधारण-विधि ६२-६५
३०. स्नातक के नियम ६५-६८

परिशिष्ट-भाग : ६९-७५

३१. सङ्कल्प-वाक्य-योजना ६९
३२. यज्ञीय-पारिभाषिक-शब्द ७०-७३
३३. यज्ञोपवीत-संस्कार में आवश्यक सामग्री ७४-७५

यज्ञोपवीत-संस्कार का वैधानिक अनुशीलन

भारतीय संस्कृति में संस्कारों का विशेष स्थान रहा है, प्राचीन भारतीय मनीषियों ने मानव को पूर्ण मानव बनाने के उद्देश्य से विभिन्न संस्कारों की कल्पना वेदादि शास्त्रों के आधार पर की है। संस्कारों की संख्या के विषय में स्मृतिशास्त्र में अनेक मत प्राप्त होते हैं, गौतमस्मृति में चालीस संस्कारों का वर्णन है, जबकि महर्षि अङ्गिरा ने अपनी स्मृति में पच्चीस संस्कार बतलाये हैं, महर्षि वेदव्यास ने व्यासस्मृति में सोलह संस्कारों का वर्णन किया है तथा पूर्ववर्ती महर्षियों द्वारा संस्कारों की संख्या में विभिन्नता प्राप्त होने पर भी उन सभी संस्कारों का उन्हीं सोलह संस्कारों में ही अन्तर्भाव बतलाया है।

संस्कारों के फल

वस्तुतः संस्कारों के फल अथवा परिणाम को दृष्टि में रखकर शास्त्रकारों ने इन्हें तीन भागों में विभक्त किया है। प्रथम दोषमार्जनात्मक संस्कार, द्वितीय अतिशयाधानात्मक संस्कार, तृतीय हीनाङ्गपूरणार्थक संस्कार। किसी भी प्राकृतिक मलिन वस्तु को उपयोगी बनाने के लिए इन्हीं तीन उपायों की आवश्यकता होती है। उदाहरण के लिए हम खान से निकले हुए लोहे पर विचार कर सकते हैं। विदित है कि खान से निकला हुआ लोहा अतिमलिन होता है, यदि उससे तलवार बनाना हो तो प्रथमतः उसका 'दोषमार्जन' अर्थात् उसे साफ करना आवश्यक होता है, पुनः उसमें अतिशय कठोरता एवं तीक्ष्णता लाने के लिए उसे आग में नियमित तपा कर इस्पात बनाना होता है। पुनः उस इस्पात को तलवार के आकार में बनाना 'अतिशयाधान' कहलाता है, इस प्रकार अतिशयाधान द्वारा तलवार

बन जाने पर उसे लकड़ी, सोने या चाँदी में जड़ना तथा उसमें मुठिया आदि लगाना पुनः म्यान आदि में सुरक्षित रखना 'हीनाङ्ग-पूरण' कहा जाता है, संस्कारों के विषय में भी यही दृष्टान्त समझना चाहिए। संक्षेप में कह सकते हैं कि गर्भाधान, जातकर्म, अन्नप्राशनादि संस्कारों द्वारा जातक का दोषमार्जन होता है। चूड़ाकरण, उपनयनादि संस्कारों द्वारा जातक में अतिशयाधान किया जाता है तथा विवाह, अग्न्याधानादि द्वारा हीनाङ्ग की पूर्ति की जाती है।

यज्ञोपवीत-संस्कार के नाम

शास्त्रकारों ने यज्ञोपवीत-संस्कार का दूसरा नाम 'उपनयन-संस्कार' बतलाया है, इसी को व्रतबन्ध, आचार्यकरण आदि नामों से भी जाना जाता है। इस संस्कार में धारण किये जाने वाले सूत्र को यज्ञसूत्र, उपवीत अथवा लोकभाषा में 'जनेऊ' शब्द से जाना जाता है। मुख्यतः वेदाध्ययन के लिए बालक को आचार्य के समीप ले जाने के उद्देश्य से किये जाने वाले संस्कार को 'उपनयन' संस्कार कहा जाता है, इसमें वेदमाता गायत्री की उपासनापूर्वक वेदारम्भ की विधि बतलायी जाती है, तथा उसमें पूर्णता-प्राप्ति के लिए कतिपय कठोर नियमों का पालन करना होता है, इन्हीं कठोर व्रतों, नियमों में बँधने के कारण ही इसका दूसरा नाम 'व्रतबन्ध' कहा जाता है, सायं-प्रातः यज्ञीय समिधाओं के द्वारा अग्नि की परिचर्या से यज्ञ सम्पन्न करने के कारण दूसरा नाम यज्ञोपवीत भी सार्थक होता है।

अनादिष्ट प्रायश्चित्त-विधि

उपनयन-संस्कार के लिए बताये गये गौण काल के अतिक्रम हो जाने पर द्विज की 'व्रात्य' संज्ञा हो जाती है, अतः उसके लिए अनादिष्ट प्रायश्चित्त का विधान बतलाया गया है, श्रौतसूत्रविहित 'व्रात्यस्तोम' प्रायश्चित्त ही स्वल्पान्तर से अनादिष्ट प्रायश्चित्त के नाम से जाना जाता है। श्रौतसूत्र के अनुसार 'व्रात्यस्तोम' प्रायश्चित्त का अनुष्ठान यद्यपि

लौकिक अग्नि में सम्पन्न होता है, फिर भी यह अनुष्ठान गणयज्ञ तथा पशुसाध्य होने के कारण इस युग में नहीं किया जा सकता, अत: स्मृतिप्रतिपादित अनादिष्ट प्रायश्चित्त करके उपनयन-संस्कार हेतु व्रात्य की शुद्धि कर लेनी चाहिए। अन्य प्रायश्चित्तों की अपेक्षा 'व्रात्य' प्रायश्चित्त सरल एवं सुसाध्य है, इसमें त्रैवर्णिक के लिए क्रमश: द्वादशाब्द, नवाब्द एवं षडब्द में गोदान अथवा तन्निष्क्रय द्रव्यदान की विधि विहित है।

काम्य विशेषोपनयन-काल

स्मृतिकारों ने कामना विशेष से द्विजाति के लिए विशिष्ट उपनयन-काल का भी निर्देश किया है। मनुस्मृति के अनुसार[१] ब्रह्मतेज की प्राप्ति की कामना से ब्राह्मण बालक का पाँचवें वर्ष में, बल चाहने वाले क्षत्रिय कुमार का छठें वर्ष में तथा धन चाहने वाले वैश्य बालक का आठवें वर्ष में भी यज्ञोपवीत-संस्कार किया जा सकता है। आज भी कुछ भारतीय अपने बालकों का उपनयन-संस्कार कामनाविशेष से विधिविहित काल में सम्पन्न कराते हैं तथा उसी समय उन्हें सन्ध्योपासन, गायत्री-जप और वेद का अध्ययन कराते हैं। उनके बालक 'सन्ध्योपासन' आदि के द्वारा अपूर्व दिव्य शक्ति प्राप्त कर स्वकुलोचित सन्मार्ग पर आरूढ होकर परम सुदर्शन, तेजस्वी और धार्मिक बनते हैं तथा अपने जीवन में सभी प्रकार की सफलता प्राप्त कर अपना और विश्व का कल्याण करते हैं।

उपनयन-संस्कार के आचार्य

उपनयन-संस्कार वही कराता है, जो उपनीत बालक को वेद का अध्ययन करा सके; मुख्यत: पिता को ही अपने बालक का उपनयन-संस्कार कर वेदाध्ययन कराने के लिए उपयुक्त माना गया है; परन्तु पिता के असमर्थ एवं अनुपलब्ध होने पर किसी सुयोग्य आचार्य द्वारा उपनयन-संस्कार कराना चाहिए तथा उसी के द्वारा वेद-विद्या का

१. तदेव-२।३७।

अध्ययन कराना चाहिए। उपनयन-संस्कार कराने वाले आचार्य को कैसा होना चाहिए। इसके सम्बन्ध में आचार्य बृहस्पति ने आचार्य का लक्षण बतलाया है कि—

आचिनोति च शास्त्राणि आचारे स्थापयत्यपि।
स्वयमाचरते यस्तु तमाचार्यं प्रचक्षते ॥ (बृ.स्मृ.)

जो वेदादि शास्त्रों का स्वयं संग्रह करे तथा वेदोक्त आचार का स्वयं आचरण करता हुआ शिष्य को भी आचारवान् बना दे, वही आचार्य कहलाता है। महर्षि याज्ञवल्क्य ने कहा है—

'उपनीय ददद् वेदमाचार्यः स उदाहृतः'॥ (या.स्मृ.)

जो द्विज बालक को उपनयन-संस्कार कराकर वेदविद्या प्रदान करे, उसे ही आचार्य कहते हैं।

मनु ने भी उक्त लक्षण को ही आचार्य का लक्षण बतलाया है, उनके अनुसार—

उपनीय तु यः शिष्यं वेदमध्यापयेद् द्विजः।
सकल्पं सरहस्यञ्च तमाचार्यं प्रचक्षते॥ (मनुस्मृति-२.४०)

जो ब्राह्मण अपने शिष्य का यज्ञोपवीत-संस्कार कर उसे कल्प-यज्ञविद्या तथा रहस्य-दर्शनविद्या सहित वेदविद्या का अध्ययन करावे, उसे आचार्य कहते हैं। यह आचार्य शिष्य को यज्ञोपवीत की पवित्रता को बनाये रखने लिए आचार—स्नान क्रिया आदि, अग्नि-परिचर्या (सायं-प्रातः समिदाधान) आदि कर्म तथा सन्ध्योपासन द्वारा सविता देवता एवं गायत्री की आराधना का विधान बताता है[१]। पिता, पितामह, पितृव्य, ज्येष्ठ भ्राता ये सब श्रेष्ठानुक्रम से उत्तरोत्तर उपनेता तथा आचार्य हो सकते हैं। प्राधान्यतः विहित विधि के अनुसार पिता को ही पुत्र का उपनयन कराना चाहिए, उनकी अयोग्यता या अभाव में क्रमप्राप्त

१. मनुस्मृति-२।६९।

पितामह कर सकते हैं, उनके अभाव में पितृव्य तथा उनके भी अभाव में सहोदर ज्येष्ठ भ्राता कर सकते हैं, यदि इनमें से कोई भी आचार्य बनने की योग्यता न रखता हो, तो महर्षि शौनक कहते हैं—

कुमारस्योपनयनं श्रुताभिजनवृत्तवान्।
तपसा धूतनिःशेषपाप्मा कुर्याद् द्विजोत्तमः॥ (शौ.स्मृ.)

कुलीन, श्रुतिशास्त्रज्ञ, सदाचार-सम्पन्न, तपःप्रभाव से निष्पाप ब्राह्मण द्विजकुमार का उपनयन करा सकता है और वही आचार्य बनकर वेदविद्या का अध्यापन एवं वेदोक्त आचार-विचार को सिखला सकता है।

उपनयन में शिखाधारण का महत्त्व

उपनयन-संस्कार में सर्वप्रथम बालक का मुण्डन कराकर शिखाधारण कराकर माला-कुण्डलादि से विभूषित कर उसे आचार्य के पास लाया जाता है, पारस्कराचार्य ने गृह्यसूत्र में **'तं च पर्युप्त-शिरसमलङ्कृतमानयन्ति'** (२.२.५) सूत्र द्वारा उक्त विधान का निर्देश किया है। चूड़ाकरण-संस्कार के समय किसी-किसी गोत्र वाले के यहाँ तीन अथवा पाँच शिखा भी रखने की विधि का निर्देश प्राप्त होता है; परन्तु उपनयन-संस्कार में केवल मध्यभाग में शिखाधारण का विधान है। बौधायन-गृह्यसूत्र में चौलवत् और बद्धशिख पद आये हैं, इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि मध्यशिखा को छोड़कर शेष शिर का मुण्डन अभिप्रेत है। इसी अभिप्राय को लेकर माधवाचार्य ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'संस्कारकौस्तुभ' में लिखा है कि—

'चौलकाले धृतशिखामध्ये, मध्यशिखेतरशिखानामुपनयन-काले वपनं कार्यम्'।

मध्ये शिरसि चूडा स्याद्वशिष्ठानां तु दक्षिणे।
उभयोः पार्श्वयोरत्रिकश्यपानां शिखा मता।।

उपनयन में मध्यशिखा को छोड़कर शेष शिरस्थ केश का वपन करना चाहिए। इसी आशय के अन्य शास्त्रीय वचन भी प्राप्त होते हैं, जैसे—**'रिक्तो वा एष यन्मुण्डस्तस्यैतदपिधानं यच्छिखा'**[१]।

इसी वचन के आधार पर महर्षि कात्यायन ने अपने श्रौतसूत्र में निर्देश किया है कि—**'केशश्मश्रु वपते वाऽशिखम्'**। (का.श्रौ.सू. २.१.९) जिसका आशय यह है कि यज्ञारम्भ में शिखा को छोड़कर शेष मूछ-दाढ़ी एवं सिर के बालों का वपन कराना चाहिए। महर्षि कात्यायन ने भी निर्देश दिया है—

सदोपवीतिना भाव्यं सदा बद्धशिखेन च।
विशिखो व्युपवीतश्च यत्करोति न तत्कृतम्॥ (का.स्मृ. १।४)

उक्त श्लोक में त्रैवर्णिक के लिए नित्य यज्ञोपवीती एवं बद्धशिखी होने का निर्देश है। सदा शब्द से नित्यत्व की प्रतीति होती है, अतः नित्य का परित्याग नहीं किया जा सकता। चूँकि नित्यकर्म के न करने से प्रत्यवाय उत्पन्न होता है, इसीलिए विना शिखा एवं विना यज्ञोपवीत के त्रैवर्णिक द्वारा किया गया कोई भी धर्मादि कार्य न करने के समान हो जाता है, अर्थात् उससे कोई अदृष्ट या अपूर्व नहीं उत्पन्न होता।

शिखा-धारण का आध्यात्मिक रहस्य

योगशास्त्र के सिद्धान्तानुसार शिखा के ठीक नीचे सहस्रदल कमल तथा उसके नीचे ब्रह्मरन्ध्र की स्थिति होती है, यही परमात्म-तत्त्व का केन्द्र स्थान बतलाया गया है। आधुनिक भौतिक विज्ञान भी शिर के पीछे के भाग में बौद्धिक ऊर्जा (braincell) की स्थिति बतलाता है, दोनों स्थितियों में शिखाभाग में केश रहने से ब्रह्मरन्ध्र अथवा बौद्धिक केन्द्र की सुरक्षा रहती है, यही कारण है कि भारतीय आर्य जाति में शिखा के साथ आयु-तेजो-बल एवं ब्रह्मचर्य की सुरक्षा का सम्बन्ध

---

१. आपस्तम्बधर्मसूत्र-१।१०।८।

बताया गया है तथा शिखा द्वारा व्यापक ब्रह्मतत्त्व का आकर्षण होना भी बतलाया गया है। इस सम्बन्ध में पश्चिमी विद्वान् डॉ. भिक्टर ई. क्रोमर ने थ्रिल नामक ओजःशक्ति की गवेषणा करने के उपरान्त एक स्थान पर लिखा है कि ध्यान के समय ओजःशक्ति प्रकट होती है: क्योंकि किसी वस्तु पर चित्त एकाग्र करने से ओजःशक्ति उसकी ओर दौड़ती है, यदि परमात्मतत्त्व पर चित्त एकाग्र किया जाय, तो मस्तक के ऊपर शिखा के मार्ग से ओजःशक्ति प्रकट होती है और परमात्मा की शक्ति उसी पथ से अपने भीतर आया करती है। सूक्ष्मदृष्टिसम्पन्न योगीजन इन दोनों शक्तियों के सुन्दर संगम को भी देख लेते हैं। जो शक्ति परमात्मतत्त्व से अपने अन्दर आती है, उसकी सुन्दरता की तुलना किसी से भी नहीं की जा सकती। अत: आधुनिक विज्ञान द्वारा भी सिद्ध हो गया है कि शिखा के द्वारा ऊपर से शक्ति प्राप्त होती है, जो ब्रह्मचर्य, बल, तेज एवं आयु को बढ़ाने वाली होती है, परमहंस संन्यासी सदा ही ब्रह्मतत्त्व से जुड़े रहते हैं। अत: उन्हें पृथक् से शिखा द्वारा ब्रह्मशक्ति खींचने की आवश्यकता नहीं होती। ब्रह्मचारी एवं वानप्रस्थी जटा और शिखा द्वारा तथा गृहस्थ जन उपनयन-संस्कार के समय रखे गये गोक्षुर शिखा द्वारा ब्रह्मशक्ति का आकर्षण कर आध्यात्मिक तथा आधिदैविक उन्नति प्राप्त करते रहते हं। आर्य संस्कृति में धार्मिक कृत्यों के समय शिखा-बन्धन, शिखा-स्पर्श, शिखा-मार्जन आदि प्रक्रिया द्वारा सदैव सहस्रदल कमल का सम्बन्ध होने से आध्यात्मिक शक्ति एवं आत्मैकत्व की दृष्टि में वृद्धि होती है। शिखा के साथ बल, वीर्य, स्वास्थ्य तथा आध्यात्मिक उन्नति का प्रबल सम्बन्ध होने के कारण ही शिखा-धारण हिन्दू-जाति का परिचायक चिह्न है।

यज्ञोपवीत का सूक्ष्म रहस्य

आचारनिष्ठ आचार्य ही उपनयन-संस्कार के द्वारा द्विजों को आध्यात्मिक रूप से तीन रात्रि तक अपने आत्मिक उदर में धारण करता

है, तदुपरान्त संस्कार सम्पन्न हो जाने पर उनका द्वितीय जन्म माना जाता है, श्रुति का प्रामाण्य भी उक्ताशय को प्रमाणित करता है, जैसा कि अथर्ववेद में कहा गया है—

आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्तः।
तं रात्रीस्तिस्त्र उदरे बिभर्त्ति तं जातं द्रष्टुमभिसंयन्ति देवाः॥

(अथर्ववेद, शौनक-सं. ११.५.३)

उपनयन-संस्कार से द्वितीय जन्म लेने वाले द्विजाति माणवक को देखने के लिए देवता भी उसके तेज के वैभव से आकृष्ट होकर संस्कार-स्थल पर उपस्थित होते हैं। यज्ञोपवीत का सम्बन्ध यज्ञ से है, तथा यज्ञ का सम्बन्ध वेद से है। जैसा कि न्यायदर्शन में कहा गया है—**'यज्ञो हि मन्त्रब्राह्मणवेदस्य विषयः'** (४.१.६२)। उन वेदों का सम्बन्ध वेदाधिकारी द्विजों से है और द्विजत्व-सम्पादन का सम्बन्ध उपनयन-संस्कार से है। विना उपनयन-संस्कार हुए द्विजवंशोत्पन्न भी वेदाध्ययनाधिकारी नहीं हो सकता। द्विजाति के कन्धों पर ही वेद-संरक्षण एवं वेदोक्त कर्मानुष्ठान, आचार-विचार, यज्ञादि सम्पादन का भार है, इस तथ्य को सदैव यज्ञोपवीत संप्रेरित करता रहता है; क्योंकि यज्ञोपवीत की संरचना ही वेद-परिमाण के अनुसार की जाती है। जैसा कि विदित है कि यज्ञोपवीत का त्रिवृत् सूत्र चार अंगुलियों पर छियानबे बार लपेटा जाता है, इसका भी वैज्ञानिक रहस्य है, जिसका उद्घाटन आचार्यों ने विभिन्न प्रकार से किया है।

पौराणिक मान्यता के अनुसार चारों वेदों में कुल मन्त्रों की संख्या एक लाख बतलायी गयी है, उसमें कर्मकाण्ड, उपासनाकाण्ड तथा ज्ञानकाण्ड ये तीन विभाग माने गये हैं। वायुपुराण तथा चरणव्यूहकार शौनक महर्षि ने वैदिक मन्त्रों की संख्या के समान ही महाभारत की संख्या भी प्रमाणित की है। तद्यथा—

'आद्यो वेदश्चतुष्पादः शतसाहस्रसम्मितः'। (वायुपुराण ६०.७)

चरणव्यूह में भी कहा है—

'लक्षं तु वेदाश्चत्वारो लक्षं भारतमेव च'। (च.व्यू. ५.१)

इसमें कर्मकाण्ड के अस्सी सहस्र मन्त्र तथा उपासनाकाण्ड के सोलह सहस्र मन्त्र बतलाये गये हैं, इन्हीं दोनों काण्डों की मन्त्र-संख्या छियानबे हजार होती है, जो यज्ञापवीत के छियानबे चावें के आवण्टन को संकेतित करती है। चूँकि चार हजार मन्त्र ज्ञानकाण्ड से सम्बद्ध हैं। अतः वे गृहस्थ यज्ञोपवीती के लिए न होकर चतुर्थाश्रम प्राप्त संन्यासी मुमुक्षु जनों के लिए होने के कारण यज्ञोपवीत सूत्र के लम्बमान आकार के मूलाधार बनाये जाते हैं, जिसके कारण त्रिवृत् सूत्र चार अंगुलियों पर छियानबे बार लपेटा जाता है। दूसरा रहस्य यह भी है कि चूँकि चारों वेदों की पूर्ण मन्त्र-संख्या एक लाख में से केवल कर्मकाण्ड एवं उपासनाकाण्ड के छियानबे हजार मन्त्रों का सम्बन्ध यज्ञोपवीत से होता है, इस कारण से भी चार वेदों के प्रतीक परिमाण की दृष्टि से चार अंगुलियों पर छियानबे बार सूत्र लपेटा जाता है। धर्मशास्त्रों की मान्यता के अनुसार केवल कर्मकाण्ड एवं उपासनाकाण्ड में कहे गये कृत्यों में ही यज्ञोपवीत धारण की आवश्यकता बतलायी गयी है, इसलिए उनकी ही मन्त्र-संख्या के अनुसार छियानबे बार सूत्र को लपेटने की विधि है, पुनः उस सूत्र को तिगुना किया जाता है। उससे ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ—इन तीनों आश्रमों को इसमें अधिकृत बताया जाता है। पुनः इस सूत्र को इस प्रकार तिगुना किया जाता है, जिसमें तीनों सूत्र अलग-अलग दिखाई पड़ें तथा सभी की पूर्णता एक ग्रन्थि के रूप में हो जाय। इस समय अभिव्यक्त सूत्रों की त्रिगुणना ऋषिऋण, देवऋण तथा पितृऋण को सूचित करती है। इस प्रकार यज्ञोपवीत सूत्र की रचना विधि से सनातन धर्म का पारमार्थिक अद्वैतवाद भी सिद्ध होता है। इसमें एक ही सूत्र से यज्ञोपवीत की रचना का प्रारम्भ होता है, तीन

बार त्रिगुणित होने के अनन्तर अन्त में ब्रह्मग्रन्थि में उसकी परिसमाप्ति की जाती है, मध्य में त्रिगुणात्मक जगत् अभिव्यक्त होता है।

संन्यासाश्रम में द्विजाति को मोक्षप्राप्त्यर्थ केवल ज्ञानकाण्ड का उपयोग करना होता है, अतः उसे छियानबे हजार कर्मोपासना के मन्त्रों के प्रतीकभूत इस अधिकार-सूत्र का परित्याग कर केवल ज्ञानकाण्ड के चार हजार मन्त्रों में ही मनन-चिन्तन करना होता है। अभीष्ट स्थान प्राप्त हो जाने पर यात्री जैसे यात्रा का साधन गाड़ी, टिकट आदि का परित्याग कर देता है, उसी प्रकार कर्मोपासना की साधना से द्विजाति को ज्ञान की प्राप्ति हो जाने पर वह भी कर्म एवं उपासना के व्रतबन्ध का प्रतीकभूत यज्ञोपवीत सूत्र का विधिपूर्वक परित्याग कर देता है।

उपनयन-संस्कार की संक्षिप्त विधि

उपनयन-संस्कार के एक दिन पूर्व बालक के माता-पिता को अपने उपनेतव्य बालक के साथ मङ्गल स्नान करना चाहिए। क्रियमाण संस्कार के निमित्त संकल्पपूर्वक गोदान तथा ब्राह्मण द्वारा गायत्री-जप कराना चाहिए। दूसरे दिन संस्काराङ्गभूत गणपतिपूजन, स्वस्ति-पुण्याहवाचन, मातृकापूजन और नान्दीश्राद्धादि कर्मों को सम्पन्न कर उपनयन-संस्कार प्रारम्भ किया जाता है, समय की अल्पता तथा बहुकार्य की व्यस्तता होने पर संस्काराङ्गभूत कर्मों को एक दिन पहले भी किया जा सकता है। उपनयन के दिन प्रथमतः बालक का क्षौर कर्म कराकर स्नान के बाद आचार्य के पास लाना होता है, आचार्य बालक को अपने दक्षिण भाग में बैठाकर **'कस्य ब्रह्मचार्यसि?** (किसके ब्रह्मचारी हो) ऐसा पूछता है, **'भवतः ब्रह्मचार्यसानि'** (आपका ब्रह्मचारी बनना चाहता हूँ) ऐसा उत्तर देने पर आचार्य मन्त्रोच्चारणपूर्वक कटिसूत्र तथा कौपीन वस्त्र पहनाता है, तदुपरान्त आचमन कराके **इयं दुरुक्तं** आदि मन्त्र से, ब्रह्मचारी के जितने प्रवर

हों, उतनी ग्रन्थि वाली मूँज की मेखला को ब्रह्मचारी के कटिभाग में पहनावे। तदनन्तर पूर्वोक्त विधि से बनाये गये यज्ञोपवीत सूत्र को निम्नलिखित विधि से ब्रह्मचारी को पहनावे। प्रथमतः **'आपो हिष्ठा'** आदि मन्त्रों से यज्ञोपवीत को सिञ्चित करे, तदनन्तर **'ब्रह्मयज्ञानं'** इत्यादि तीन मन्त्रों द्वारा उसे अंगुष्ठ में घुमावे, पुनः यज्ञोपवीत के नौ (९) तन्तुओं में ओंकारादि नौ देवताओं का विन्यास करके आचार्य उसे अपनी अञ्जलि में रखकर दस बार गायत्री मन्त्र द्वारा अभिमन्त्रित करे तथा सूर्यनारायण को मन्त्रपूर्वक दिखाकर ब्रह्मचारी के हाथ में यज्ञोपवीत दे दे। तत्पश्चात् ब्रह्मचारी **'यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं'** इत्यादि मन्त्र से यज्ञोपवीत अपने वाम कन्धे पर धारण कर ले। ततः आचार्य मन्त्रपूर्वक उसे वस्त्र तथा मृगचर्म का उत्तरीय पहनने को देता है, ब्रह्मचारी उसे **'युवा सुवासाः'** तथा **'मित्रस्य चक्षुर्वरुणं'** इत्यादि मन्त्रों से उसे धारण कर लेता है, तदनन्तर आचार्य उसे पलाशादि वृक्ष का यथापरिमाण दण्ड देता है, ब्रह्मचारी **'यो मे दण्ड'** इत्यादि मन्त्र से उसे धारण कर लेता है, पुनः आचार्य अपनी अञ्जलि से ब्रह्मचारी की अञ्जलि में तीन बार मन्त्रपूर्वक जल भरता है। ब्रह्मचारी उसी जलाञ्जलि से तीन बार सूर्यनारायण को अर्घ्य देता है। आचार्य के **'सूर्यमुदीक्षस्व'** कहने पर ब्रह्मचारी मन्त्रपूर्वक सूर्य का दर्शन करता है। पुनः आचार्य बालक के दाहिने कन्धे के ऊपर से हाथ ले जाकर **'मम व्रते ते हृदयं दधामि'** इत्यादि मन्त्र से उसके हृदय का स्पर्श करता है। पुनः आचार्य बालक के दाहिने हाथ का अँगूठा पकड़कर नाम पूछता है—**'को नामासि'**? ब्रह्मचारी गोत्र, प्रवर, वेदशाखा आदि का उच्चारण कर अपना नाम—**'अमुकशर्माऽहं भोः'** ऐसा प्रत्युत्तर देता है।

इस प्रकार उपनयन-संस्कार में अनेक कृत्य किये जाते है, जिन्हें आगे 'सरल सुबोध पद्धति' में समझाया गया है। संस्कार कृत्य की

परिपूर्णता होने के अनन्तर आचार्य ब्रह्मचारी को कतिपय नियमों का उपदेश देता है—वह कहता है, अब तुम यज्ञोपवीती हो गये, आज से तुम वेदोक्त कर्म करने के अधिकारी बन गये हो, तुम आज से नित्यप्रति स्नानपूर्वक सन्ध्योपासन, समिदाधान, वेदाध्ययन, भिक्षाचर्यादि शास्त्रोक्त नियमों का पालन करोगे तथा मधुमांसभक्षण, स्त्रीगमन, अनृतभाषण, अदत्तदान आदि शास्त्रनिषिद्ध कार्यों को नहीं करोगे। ब्रह्मचारी इन विधि-निषेध नियमों के परिपालन की प्रतिज्ञा करता है। तदनन्तर आचार्य उसे सावित्री मन्त्र का उपदेश देता है।

गायत्री-मन्त्र-दीक्षा

किसी ताम्र आदि पात्र में तण्डुल भर कर उस पर सुवर्ण शलाका या कुशमूल से आचार्य प्रणव एवं व्याहृतिपूर्वक गायत्री मन्त्र लिख देता है, बालक संकल्पपूर्वक गन्धाक्षत-पुष्प से गायत्री की पूजा करता है, तदनन्तर गणपत्यादि देवताओं एवं आचार्य का पूजन कर उनके द्वारा उच्चारित गायत्री मन्त्र का ग्रहण करता है, आचार्य स्वयं पूर्वाभिमुख होकर बालक को अपने समक्ष पश्चिमाभिमुख बैठाकर नूतन वस्त्र से वटुक को आच्छादित कर उसके दाहिने कान में प्रणव-व्याहृतिसहित गायत्री मन्त्र की दीक्षा तीन आवृत्ति में प्रदान करता है। आचार्य प्रथमावृत्ति में प्रणव और व्याहृतियों के साथ गायत्री मन्त्र के एक-एक पाद का उच्चारण कराता है। द्वितीयावृत्ति में आधी-आधी ऋचा का उच्चारण कराता है। तृतीयावृत्ति में प्रणव-व्याहृति के साथ पूरे मन्त्र का उच्चारण आचार्य एवं शिष्य साथ-साथ करते हैं। ऐसा तीन बार कहलाकर आचार्य और शिष्य दोनों **'ॐ स्वस्ति'** कहें। इसके अनन्तर कुछ हवनादि कृत्य सम्पन्न किये जाते हैं। तदनन्तर बालक गायत्री दीक्षा प्राप्त करके अग्निदेवता एवं सूर्यनारायण को प्रणाम करने के बाद आचार्य तथा अपने माता-पिता एवं कुल के अन्यान्य मान्य स्त्री-पुरुषों को अभिवादन करता है।

इसके बाद ब्रह्मचारी भिक्षाचर्य का परिपालन करता है, प्रथम भिक्षा वह अपनी माता से माँगता है, वर्ण के अनुसार याचना के वाक्य में व्यत्यास की विधि बतलायी गयी है। भिक्षा से प्राप्त अन्न को आचार्य के समक्ष रख दे तथा उनकी आज्ञानुसार भोजन करे। भोजनकाल से लेकर सूर्यास्त होने तक मौन रहे, सायं-प्रातः अग्नि की परिचर्या एवं सन्ध्योपासना द्वारा गायत्री की उपासना एवं गुरुशुश्रूषा करे। आचार्य ब्रह्मचारी के ब्रह्मचर्य व्रत एवं गुरुसेवा से सन्तुष्ट होकर शुभ मुहूर्त में वेदारम्भ करावे। वेदारम्भ एक अलग संस्कार है, जिसकी समीक्षा पृथक् से की गयी है।

वेदारम्भ-संस्कार-विवेचन

उपनयन-संस्कार के बाद बालक आचार्य के सन्निधान में रहकर कुछ दिनों तक आचार्य की सेवा करते हुए पूर्वोक्त दैनिक दिनचर्या द्वारा ब्रह्मचर्य का पालन करता है। आचार्य सनत्सुजात ने ब्रह्मचर्य के चार पादों का वर्णन किया है, उनके अनुसार माता-पिता केवल स्थूल शरीर उत्पन्न करते हैं; परन्तु आचार्य उस शरीर को आध्यात्मिक ज्ञान प्रदान कर सत्य और अमृत बना देता है। यथा—

शरीरमेतौ कुरुतः पिता माता च भारत।
आचार्यतस्तु तज्जन्म तत्सत्यं वै तथामृतम्॥

परमात्मा तथा गुरु में जिसकी पूरी भक्ति होती है, उसी के हृदय में तत्त्वज्ञान का स्फुरण होता है। इस प्रकार आचार्य के चरणों में रहकर जो ब्रह्मचर्य का पालन किया जाता है, उसके चार पाद बतलाये गये हैं—

शिष्यवृत्तिक्रमेणैव विद्यामाप्नोति यः शुचिः।
ब्रह्मचर्यव्रतस्यास्य प्रथमः पाद उच्यते॥

अन्दर और बाहर की पवित्रता के साथ शिष्य वृत्ति के द्वारा आचार्य से जो वेदविद्या का अर्जन होता है, वही ब्रह्मचर्य का प्रथम पाद कहा गया है। इसी प्रकार—

यथा नित्यं गुरौ वृत्तिर्गुरुपत्न्यां तथा चरेत्।
तत्पुत्रे च तथा कुर्वन् द्वितीयः पाद उच्यते॥

गुरु आचार्य के समान ही गुरुपत्नी तथा गुरुपुत्र में भी सद्वृत्ति एवं पूज्य की भावना रखना ब्रह्मचर्य का द्वितीय पाद है। तथा—

आचार्येणात्मकृतं विजानन्
ज्ञात्वा चार्थं भावितोऽस्मीत्यनेन।
यं मन्यते तं प्रति दृष्टबुद्धिः
स वै तृतीयो ब्रह्मचर्यस्य पादः॥

आचार्य के द्वारा अपने प्रति उपकार को समझकर तथा उसके द्वारा प्राप्त वेदविद्या से अपने को सम्भावित जानकर जो हृदय में प्रसन्नता और कृतार्थता उत्पन्न होती है, वही ब्रह्मचर्य का तृतीय पाद है। तथा—

आचार्याय प्रियं कुर्यात् प्राणैरपि धनैरपि।
कर्मणा मनसा वाचा चतुर्थः पाद उच्यते॥

प्राण-धन-मन-वाणी तथा कर्म द्वारा आचार्य का सर्वतोभावेन प्रिय करना ही ब्रह्मचर्य का चतुर्थ पाद है।

इस प्रकार उपनीत ब्रह्मचारी मूँज की मेखला, मृगचर्म, पलाश-दण्ड, कौपीन वस्त्र एवं भस्म धारण करता हुआ अग्निपरिचर्या, भिक्षाचरण, भूमिशयन, गुरुशुश्रूषा आदि अनेक कठिन नियमों के परिपालन में दक्ष हो जाता है, तब आचार्य उसका वेदारम्भ-संस्कार करता है।

इस संस्कार में समुद्भव नामक अग्नि की स्थापना की जाती है, कुशकण्डिका-विधानपूर्वक समस्त पूर्वपञ्चाङ्ग पूजन में आवाहित देवताओं को हवि प्रदान करने के अनन्तर अपनी वेदशाखा से सम्बन्धित चार आहुति प्रदान की जाती है। तदुपरान्त पञ्चवारुणी आहुति प्रदान कर वेदारम्भ-संस्कार के पूर्व अंग के रूप में विहित सरस्वती, लक्ष्मी, विष्णु, वेद एवं आचार्य का यथाविधि पूजन कर स्वशाखा के मन्त्रों को आरम्भ किया जाता है। वेदमन्त्र आरम्भ करने के पहले ब्रह्मचारी प्रणव तथा व्याहृतिपूर्वक गायत्री-मन्त्र का उपांशु उच्चारण करता है। तदनन्तर स्वशाखीय वैदिक शिक्षा-ग्रन्थोक्त विधि के अनुसार आचार्य

के समक्ष सुखासन में बैठकर गुरुमुखोच्चारित वेदमन्त्रों का उसी स्वर संस्कार के साथ अनूच्चारण करता है। इस प्रकार पूर्वोक्त ब्रह्मचर्य नियमों के साथ वेदाभ्यास का भी नियम जोड़ लेता है, तथा प्रतिदिन आचार्य से वेदमन्त्र ग्रहण कर उसे धारण करने हेतु अभ्यास करता है। याज्ञवल्क्य ने कहा है कि—

वेद एव द्विजातीनां निःश्रेयस्करः परः।
यं यं क्रतुमधीयीत तस्य तस्याप्नुयात् फलम्॥

अर्थसहित वेद का अध्ययन करने से जिन-जिन क्रतुओं का अध्ययन होता है, अध्ययनमात्र से ही ब्रह्मचारी उसके फल से युक्त होता जाता है[१]। इस प्रकार अङ्गों सहित वेद का अध्ययन पूर्ण करने के उपरान्त समावर्तन संस्कार होता है।

१. यं यं क्रतुमधीते तेन तेनास्येष्टं भवति, अग्नेर्वायोरादित्यस्य सायुज्यं गच्छति। (तै.आ. २।९४)

समावर्तन-संस्कार एवं गृहस्थ जीवन

आचार्य-गृह में ब्रह्मचर्यादि नियमों के पालन के साथ वेद-विद्या की सम्पूर्ति हो जाने के उपरान्त आचार्य की आज्ञा से गृहस्थ जीवन में प्रवेश के लिए समावर्तन-संस्कार का अनुष्ठान किया जाता है, इस संस्कार में भी वेदारम्भ की सारी विधियाँ अपनायी जाती हैं। स्वस्ति-पुण्याहवाचनादि पञ्चाङ्ग-पूजन के अनन्तर यहाँ पर वैश्वानर नामक अग्नि की स्थापना करके शास्त्रोक्त कुशकण्डिका-विधान के अनन्तर पूर्वावाहित देवताओं को आहुति प्रदान कर अपनी वेदशाखा से सम्बद्ध देवताओं को आहुति दी जाती है। पुनः शुष्क गोमय-खण्ड से मन्त्रपूर्वक पाँच आहुतियों से अग्नि की वरिवस्या कर पूर्वगृहीत समिधा द्वारा समिदाधान करके मुखादि-सम्मार्जनपूर्वक अग्नि से आयु और तेज-प्राप्ति की याचना की जाती है, तदनन्तर एक-एक मन्त्र से प्रत्येक अंगों के आप्यायन, वृद्धि एवं स्वस्थता के लिए शिर से पैर तक स्पर्श करता हुआ ब्रह्मचारी अग्नि से प्रार्थना करता है। तदनन्तर भस्मच्छुरित ललाट होकर आचार्य को प्रणाम करके उनकी आज्ञा से अग्नि के उत्तर दिशा में पूर्वतः स्थापित एवं पूजित आठ कुम्भों से जल लेकर क्रमशः मन्त्रोच्चारणपूर्वक स्नान करता है, तदुपरान्त मेखला, दण्ड, मृगचर्म आदि का विधिपूर्वक परित्याग कर दोनों हाथ उठाकर सूर्योपस्थान करता है, पुनः शिखा को छोड़कर शेष जटा-लोम-नखों का कर्तन कराकर स्नानादि कृत्य पूर्ण कर सुन्दर वस्त्र एवं द्वितीय यज्ञोपवीत धारण कर गृहस्थाश्रम में प्रवेश की इच्छा प्रकट करता हुआ आचार्य से अनुमति की याचना करता है।

गृहस्थ जीवन में प्रवेशार्थ गृहप्रत्यागमन हेतु किये जाने वाले इस संस्कार को समावर्तन-संस्कार कहा गया है। वेद का आदेश भी यही है कि—

'आचार्याय प्रियं धनमाहृत्य प्रजातन्तुं मा व्यवच्छेत्सीः'। (तै.उप.)

इसका आशय यह है कि आचार्य को दक्षिणा रूप से यथेप्सित धन देकर प्रजातन्तु की रक्षा के लिए स्नातक द्विज को गृहस्थ जीवन में प्रवेश करना चाहिए। जो विद्या आचार्य से प्राप्त होती है, उसका परिशोधन धन द्वारा कदापि नहीं किया जा सकता, जैसा कि महर्षि हारीत ने अपनी स्मृति में कहा है—

एकमप्यक्षरं यस्तु गुरुः शिष्ये नियोजयेत्।
पृथिव्यां नास्ति तद्द्रव्यं यद्दत्वाप्यनृणो भवेत्॥

जो गुरु एक भी अक्षर शिष्य को प्रदान करते हैं, पृथिवी में ऐसा कोई धन नहीं है, जिसको देकर शिष्य उस ऋण से मुक्त हो सके। आशय यह है कि इस संसार में ज्ञान सबसे श्रेष्ठ वस्तु है, विद्या से ज्ञान की प्राप्ति होती है। ज्ञान के साथ धन की तुलना नहीं हो सकती; क्योंकि ज्ञान अमूल्य वस्तु है, अतः ज्ञानप्रदाता गुरु के ऋण से क्या कोई धन देकर मुक्त हो सकता है? कदापि नहीं। तथापि लौकिक विधि के अनुसार विद्या-व्रत की समाप्ति पर गुरुदक्षिणा देने की वेदाज्ञा है तथा आचार्य की अनुज्ञा से गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने की अनुमति दी गयी है। जैसा कि मनु ने भी आज्ञा दी है—

वेदानधीत्य वेदौ वा वेदं वाऽपि यथाक्रमम्।
अलुप्तब्रह्मचर्यो गृहस्थाश्रममावसेत्॥ (मनु. ३।२)

आशय यह हैं कि ब्रह्मचारी को चाहिए कि अखण्डित ब्रह्मचर्य को धारण करते हुए अपनी कुलक्रमागत वेदशाखा के अतिरिक्त तीन अन्य वेदों का अथवा दो अन्य वेदों का अथवा उतना न कर सके तो केवल एक वेद का अध्ययन पूर्ण कर गृहस्थाश्रम में प्रवेश करे।

पारस्कराचार्य ने समावर्तन के लिए स्नान शब्द का प्रयोग किया है, विधिवत् वेदाध्ययन पूर्ण कर जब ब्रह्मचारी गुरु की आज्ञा लेकर

स्नान करता है, तब उसे स्नातक कहते हैं। आचार्य पारस्कर ने तीन प्रकार के स्नातकों का उल्लेख अपने गृह्यसूत्र में किया है, वे हैं-- विद्यास्नातक, व्रतस्नातक तथा विद्याव्रतस्नातक। जो ब्रह्मचारी केवल विद्या प्राप्त कर पाते हैं, तदङ्गतया विहित व्रतों का निर्वाह नहीं कर पाते हैं, वे विद्यास्नातक कहलाते हैं और ऐसे ब्रह्मचारी जो सर्वाङ्गीण रूप से विद्या तो नहीं प्राप्त कर पाते; परन्तु तत्प्रयुक्त व्रतों का कठोरतापूर्वक पालन कर लेते हैं, उन्हें व्रतस्नातक कहा जाता है, इसी प्रकार जो ब्रह्मचारी ब्रह्मचर्य नियमों के कठोर व्रतों का पालन करते हुए वेदविद्या की सम्पूर्णता को भी प्राप्त कर लेते हैं, वे ही विद्या-व्रतस्नातक कहलाते हैं, जो सभी स्नातकों में सर्वश्रेष्ठ माने जाते हैं। स्मृतिग्रन्थों में इनकी बड़ी प्रशंसा की गयी है। मनु ने देव एवं पितृ कर्म में इनकी ही पूजा करने की आज्ञा दी है। तद्यथा—

वेदविद्याव्रतस्नातान् श्रोत्रियान् गृहमेधिनः।
पूजयेद्धव्यकव्येन विपरीतांश्च वर्जयेत्॥ (मनु. ४।३)

वर्णाश्रम व्यवस्था प्राचीन भारत की सुदृढ़ आधारशिला थी, जिस पर हमारी सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था आधारित थी, वेदाध्ययन ही भारतीयों का प्रमुख शिक्षण-विधान था। एक वेद के साङ्गोपाङ्ग अध्ययन में १२ वर्ष लगता था, चारों वेदों के अध्ययनार्थ अड़तालीस वर्ष तक ब्रह्मचर्यादि का परिपालन करना होता था, आचार्य गदाधर ने अपने भाष्य में दीर्घकाल तक के इस व्रत को सत्रयाग की संज्ञा दी है— **'दीर्घसत्रं वा एष उपैति यो ब्रह्मचर्यमुपैति'**। इस प्रकार वेदाध्ययन एवं तदुक्त निर्देशों के पालन से पूरा राष्ट्र मर्यादित एवं सुखी तथा प्रसन्न था, इसीलिए चाणक्य ने वेद से ही लोकरक्षा की सम्भावना व्यक्त की है। यथा—

व्यवस्थितार्यमर्यादः कृतवर्णाश्रमस्थितिः।
त्रय्या हि रक्षितो लोकः प्रसीदति न सीदति॥

यज्ञोपवीत-वेदारम्भ-समावर्तन-प्रयोगविधिः

नत्वा गणपतिं साम्बं शिवं सूर्यं गुरुं तथा।
संस्कारत्रयं कुरुते राममूर्तिश्चतुश्श्रुतिः॥
यज्ञोपवीत-वेदारम्भ-समावर्तनकर्मणाम्।
हिन्दीमन्त्रार्थसहिता पद्धतिर्लिख्यते मया॥

यज्ञोपवीत-वेदारम्भ-समावर्तन तीनों संस्कारों के लिए प्रयोग-विधि यहाँ लिखते हैं। पौरोहित्य-कर्मप्रवीण पुरोधा एव सामान्य आस्तिक जनों के लिए सरल, सुबोध हिन्दी-भाषा में मन्त्रों के अर्थ तथा आवश्यक निर्देश किये जाते हैं।

हिन्दी-मन्त्रार्थसहित यज्ञोपवीत-संस्कार-प्रयोग

निर्देश—उपनयन-संस्कार के एक दिन पूर्व या उसी दिन बालक के माता-पिता को व्रतोपवासपूर्वक माङ्गलिक स्नान करके, ललाट में तिलक-चन्दन लगाकर सन्ध्योपासनादि दैनन्दिन कृत्य सम्पन्न करके शुद्ध पवित्र स्थान पर आसन बिछाकर पूर्वाभिमुख बैठना चाहिए तथा बालक को अपने दक्षिण में बैठाकर रक्षादीप जलाना चाहिए, पुनः मन्त्रपूर्वक आचमन, प्राणायाम करना चाहिए। **'पवित्रेस्थो वैष्णव्यो'** आदि मन्त्र से पवित्री धारण कर दूर्वा-कूर्च से **'अपवित्रः पवित्रो वा'** मन्त्र से अपने शरीर एवं पूजा-सामग्री के ऊपर जल से सम्प्रोक्षण करना चाहिए। उसके बाद बालक सहित उसके माता-पिता परमेश्वर का ध्यान कर हाथ में अक्षत, पुष्प धारण करें तथा आचार्यगण **'आनो भद्रा'** आदि स्वस्त्ययन मन्त्रों एवं **'सुमुखश्चैकदन्तश्च'** इत्यादि पौराणिक मन्त्रों का पाठ करें।

पुनः हाथ में जल-अक्षत और द्रव्य लेकर संकल्प करें, उसमें **'उपनयन-वेदारम्भ-समावर्तन-संस्काराङ्गतया विहितपञ्चाङ्गपूजनं**

करिष्ये' इतना अंश जोड़ देवें'। (विस्तृत संकल्प-वाक्य-योजना परिशिष्ट भाग में देखें)

आचार्य को चाहिए कि स्वस्तिवाचन-मन्त्रपाठ से लेकर नान्दी-श्राद्ध तक पञ्चाङ्ग-पूजन सहित मण्डप-प्रतिष्ठा एवं नवग्रहादि पूजन सुप्रसिद्ध ग्रन्थ **'ग्रहशान्ति'** के अनुसार एक दिन पूर्व या संस्कार के दिन सम्पन्न कर लें।

तदुपरान्त उपनयन-संस्कार से पूर्व होने वाले गर्भाधानादि संस्कारों के न किये जाने से उत्पन्न हुए प्रत्यवायों के परिहार के लिए प्रतिसंस्कार के निमित्त एक-एक गोदान का संकल्प करना चाहिए। गोदान का संकल्प-वाक्य निम्न रीति से बोलना चाहिए—

देशकालौ संकीर्त्य **'अमुकगोत्रः अमुकशर्मा ममास्य कुमारस्य अमुकगोत्रोत्पन्नस्य अमुकनाम-शर्मणः/वर्मणः/गुप्तस्य गर्भाधान-पुंसवन-सीमन्तोन्नयन-जातकर्म-नामकरण-निष्क्रमणान्नप्राशन-चूडा-करणसंस्काराणां स्व-स्वकालेऽकृतानां कालातिक्रमणदोषपरि-हारेण उपनयनाधिकारसिद्धिद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं प्रतिसंस्कार-मेकैकां गां, तन्निष्क्रयभूतं द्रव्यं यथानामगोत्राय ब्राह्मणाय दातुमह-मुत्सृजे'**। इस प्रकार वाक्य बोलकर जलाक्षतद्रव्य को किसी सुपात्र ब्राह्मण के हाथ में दे दे, तदनन्तर निम्न श्लोक बोले—

यज्ञसाधनभूताया विश्वस्याघौघनाशिनी।
विश्वरूपधरो देवः प्रीयतामनया गवा॥

उसके बाद प्रधान संकल्प करें—

देशकालौ सङ्कीर्त्य.....**गोत्रः शर्माहं ममास्य कुमारस्य अमुकगोत्रस्य अमुकशर्मणः द्विजत्वसिद्ध्या वेदाध्ययनाधिकार-सिद्धिद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीतये उपनयनसंस्कारं करिष्ये।**

निर्देश—उपनयन के दिन पिता अथवा आचार्य को अपने-अपने उपनेतृत्वाधिकार की सिद्धि के लिए प्रायश्चित्तस्वरूप गोदानत्रय का

निष्क्रय द्रव्य ब्राह्मण को दान देना चाहिए तथा गायत्री के उपदेशाधिकार की सिद्धि के लिए बारह हजार अथवा एक हजार बारह अथवा एक लक्ष गायत्री-जप का संकल्प करना चाहिए तथा उसे यथावसर पूर्ण कर लेना चाहिए।

गोदानादि-सङ्कल्पः

देशकालौ सङ्कीर्त्य.....**गोत्रः शर्माहं ममास्य कुमारस्य अमुक-गोत्रस्य अमुकशर्मणः उपनयनकर्मणि मम उपनेतृत्वाधिकारसिद्धि-द्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीतये गोत्रयनिष्क्रयद्रव्यं यथानामगोत्राय ब्राह्मणाय दातुमहमुत्सजे**। इति दद्यात्। सति सम्भवे **'मम गायत्र्युपदेशाधि-कारसिद्धये द्वादशसहस्रं द्वादशाधिकसहस्रं वा अयुतसंख्याकं वा गायत्रीमन्त्रजपं करिष्ये,** इति यथाकालं कुर्यात्।

निर्देश—पिता अथवा आचार्य को बालक से भी अपने उपनेयत्वाधिकार की सिद्धि के लिए गोदानत्रय करवाना चाहिए, पुनः स्वयं कुमार के वपन का संकल्प कर शिखा छोड़कर मुण्डन एवं स्नान कराना चाहिए, पुनः तीन ब्राह्मणों अथवा आठ ब्राह्मण बटुओं के साथ बालक को भी मिष्ठान्न, दधि आदि खिलाना चाहिए।

तत्र विधिः

ततो माणवकः, 'गोत्रः शर्माहं कामचार-कामवाद-कामभक्षणादिदोषपरिहारेण स्वस्य उपनेयत्वाधिकारसिद्धये गोत्रयनिष्क्रयद्रव्यं ब्राह्मणाय सम्प्रददे' इति दद्यात्। ततः आचार्यः **'अमुकगोत्रस्य अमुकशर्मणोऽस्य कुमारस्य उपनयनाङ्गभूतं वपनं करिष्ये'** इति सङ्कल्प्य शिखां वर्जयित्वा मुण्डनं ततः स्नानञ्च कारयित्वा कुमारमलङ्कुर्यात्। ततः **'अमुकगोत्रस्य अमुकनाम्नोऽस्य कुमारस्योपनयनाख्ये कर्मणि पूर्वाङ्गत्वेन त्रीन् अष्टौ वा ब्राह्मणान् भोजयिष्यामि'** 'भोजनपर्याप्तं मिष्टं तन्निष्क्रयद्रव्यं वा दास्ये' इति वा सङ्कल्पयेत्। ततः त्रिप्रभृति अष्टौ ब्राह्मणान् भोजयेत्। तन्मध्ये कुमारमपि दधिमध्वादि भोजयेत्।

निर्देश—आचार्य अग्निस्थापन हेतु संकल्प करे तथा बालक के हाथ से चार अंगुल ऊँची तथा चौबीस अंगुल लम्बी-चौड़ी वर्गाकृति वेदी पर पञ्चभू-संस्कार करके **'अग्निदूतम्'** मन्त्र से समुद्भव नामक अग्नि की स्थापना करे।

पञ्चभू-संस्कार-विधिः

१. **कुशैः परिसमुह्य**—तीन या अधिक कुशाओं द्वारा वेदी को पश्चिम से पूर्व की ओर अथवा दक्षिण से उत्तर की ओर बहारें और उन कुशाओं को ईशान दिशा में फेंक दे।

२. **गोमयोदकाभ्यामुपलिप्य**—गोबर में जल मिलाकर उसी क्रम से प्राक्संस्थ या उदक्संस्थ भूमि का लेपन करे।

३. **स्रुवेणोल्लिख्य**—यज्ञपात्र स्रुवा अथवा स्फय से दक्षिणोत्तर क्रम से प्रागग्र तीन रेखा खींचे।

४. **पांशुमुद्धृत्योत्क्षिप्य**—उन तीनों रेखाओं से मिट्टी चुटकी से निकालकर एक-एक करके तीन बार बायें हाथ में रखें तथा पुनः उन सभी को दक्षिण हाथ से ईशान दिशा में फेंक दें।

५. **उदकेनाभ्युक्ष्य**—स्वच्छ जल से अधोमुख हाथ से वेदी पर जल छिड़कें।

आचार्य, उसके बाद किसी तैजस पात्र में श्रोत्रिय-वैदिक के घर से अथवा ब्राह्मण अपने ही घर से कुलाचारानुसार किसी सौभाग्यवती नारी द्वारा एक पात्र में रखकर दूसरे पात्र में ढककर लायी गयी लौकिक धूमरहित अग्नि को मन्त्रोच्चारणपूर्वक वेदी पर संकल्पपूर्वक स्थापित करें।

सङ्कल्पः—'अस्य कुमारस्योपनयनकर्मणि समुद्भवनामाग्नेः स्थापनं करिष्ये'।

मन्त्रः—ॐ अग्निन्दूतं पुरोदधे हव्यवाहमुपब्रुवे। देवाँ आसादयादिह।।

मन्त्रार्थ—देवताओं के दूत तथा उनको हवि पहुँचाने वाले अग्नि-देव को मैं सबसे पहले इस वेदी पर प्रतिष्ठित करता हूँ तथा इस उपनयन-यज्ञ में देवताओं को बुलाने के लिए उनसे प्रार्थना करता हूँ।

निर्देश—वेदी पर अग्नि स्थापित करने के बाद उसके उज्जीवन के लिए शुष्क काष्ठादि का प्रक्षेपण कर धमनी आदि के द्वारा उसको समिन्धित कर देना चाहिए। इसी समय माणवक-ब्रह्मचारी बालक को अग्नि के पश्चिम तथा आचार्य के दक्षिण तरफ लाया जाता है, आचार्य ब्रह्मचारी से कुछ प्रश्नोत्तर सुनने के बाद उसे कौपीन वस्त्र तथा मेखला आदि मन्त्रपूर्वक पहनाते हैं।

विधिः

आचार्यः—**'ॐ ब्रह्मचर्यमागाम्'** (मैं ब्रह्मचर्य धारण करता हूँ, ऐसा बोलो) इति ब्रूहि, इति प्रेषयेत्। (माणवक अग्नि के पश्चिम तथा आचार्य के दक्षिण बैठा हुआ उत्तर देता है)

माणवकः—**'ॐ ब्रह्मचर्यमागाम्'** (मैं ब्रह्मचर्य धारण करता हूँ) इति वदेत्।

ततः **आचार्यः**—**'ॐ ब्रह्मचार्यसानि'** (मैं ब्रह्मचारी बनना चाहता हूँ, ऐसा बोलो) इति ब्रूहि' इति वदेत्।

माणवकोऽपि—**'ॐ ब्रह्मचार्यसानि'** इति प्रतिवदेत्। (ब्रह्मचारी उक्त रूप बोले)

ततः आचार्यः कटिसूत्रं तूष्णीं माणवकं धारयित्वा कौपीनं वासः परिधापयति।

आचार्यद्वारा वस्त्रधारणमन्त्रः (माणवक को)

ॐ येनेन्द्राय बृहस्पतिर्वासः पर्यदधादमृतम्।
तेन त्वा परिदधाम्यायुषे दीर्घायुत्वाय बलाय वर्चसे॥ इति।

मन्त्रार्थ—हे कुमार! जिस प्रकार इन्द्र के आचार्य बृहस्पति ने इन्द्र को दोषरहित अमृतमय वस्त्र पहनाया था, उसी प्रकार तुम्हारा आचार्य मैं तुम्हें दीर्घायु, बल और तेज बढ़ाने के लिए यह वस्त्र पहनाता हूँ।

ततो त्रिराचामेत् (माणवक वस्त्र पहनने के बाद तीन बार आचमन करे), आचार्यो मेखलां बध्नीते (आचार्य माणवक को कटिप्रदेश में मेखला पहनाता है)।

मेखलाधारणमन्त्रः

ॐ इयं दुरुक्तं परिबाधमाना वर्णं पवित्रं पुनती म आगात्।
प्राणापानाभ्यां बलमादधाना स्वसा देवी सुभगा मेखलेयम्॥

मन्त्रार्थ—यह मूँज की मेखला दुर्वचनों को शमन करने वाली, वर्ण को स्वच्छ एवं पवित्र करने वाली है। यह प्राण और अपान दोनों वायुओं से बल की वृद्धि करती हुई तुम्हारी बहन के समान हितकारिणी बने।

निर्देश—आचार्य माणवक के कटिप्रदेश में मेखला को तीन बार लपेट कर उसकी प्रवर-संख्या के अनुसार नाभि के ऊपर बाँध दे, तथा माणवक यहाँ गायत्री का स्मरण कर अपनी शिखा बाँध ले।

सदोपवीतिना भाव्यं सदा बद्धशिखेन च।
विशिखो व्युपवीतश्च यत्करोति न तत्कृतम्॥ इति वचनात्।

यज्ञोपवीत-धारण-विधिः

एतदनन्तर माणवक यज्ञोपवीत-संस्कार के निमित्त ब्राह्मण को प्रथमतः फलादि के साथ आठ यज्ञोपवीत का दान करके यज्ञोपवीत के नौ तन्तुओं तथा ग्रन्थियों में देवताओं का आवाहन कर प्रतिष्ठापित करता है।

विधिः—ततो माणवकः **'गोत्रः शर्माहं मम यज्ञोपवीतधारणाधिकारसिद्धिद्वारा संस्कारप्राप्तये इमानि अष्टौ**

यज्ञोपवीतानि तण्डुलदक्षिणाफलपात्रयुतानि अमुकामुकगोत्रेभ्यो ब्राह्मणेभ्यः सम्प्रददे'। ऐसा संकल्प कर आठ तण्डुलपूरित पूर्णपात्र के साथ यज्ञोपवीत का दान करे। आचार्य एक यज्ञोपवीत लेकर किसी पात्र में रखकर मन्त्र से अभिमन्त्रित करे तथा प्रत्येक तन्तुओं में देवताओं को नमस्कारपूर्वक प्रतिष्ठित करे।

अभिमन्त्रणमन्त्रः

ॐ प्राणानां ग्रन्थिरसि रुद्रो मा विशान्तकः। तेनान्नेनाप्यायस्व॥ इत्यभिमन्त्र्य.....

मन्त्रार्थ—हे रुद्र! तुम प्राणों को जोड़ने वाली ग्रन्थि हो, अतः इस ब्रह्मचारी बालक की मृत्यु से रक्षा करो तथा अन्न के द्वारा इसका पोषण करो।

ॐकारदैवत्याय प्रथमतन्तवे नमः॥१॥ ॐ अग्निदैवत्याय द्वितीयतन्तवे नमः॥२॥ ॐ नागदैवत्याय तृतीयतन्तवे नमः॥३॥ ॐ सोमदैवत्याय चतुर्थतन्तवे नमः॥४॥ ॐ पितृदैवत्याय पञ्चमतन्तवे नमः॥५॥ ॐ प्रजापतिदैवत्याय षष्ठतन्तवे नमः॥६॥ ॐ वायुदैवत्याय सप्तमतन्तवे नमः॥७॥ ॐ सूर्यदैवत्याय अष्टमतन्तवे नमः॥८॥ ॐ सर्वदैवत्याय नवमतन्तवे नमः॥९॥ इति नत्वा।

ब्रह्मजज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्वि सीमतः सुरुचो व्वेन आवः। स बुध्न्या उपमा अस्य विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च व्विवः।। ॐ ब्रह्मणे नमः।

मन्त्रार्थः—यह ब्रह्मरूप आदित्य पहले पूर्वदिशा में उदय होकर पृथिवी की सीमापर्यन्त अपनी सुन्दर किरणों का विस्तार करते हैं और यही समस्त अन्तरिक्ष लोक के एकमात्र लक्ष्य हैं, एवं यही इस संसार के भले और बुरे समस्त पदार्थों की स्थिति के कारण हैं।

ॐ इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्। समूढमस्यपाꣳसुरे स्वाहा॥ ॐ विष्णवे नमः।

मन्त्रार्थ—सर्वव्यापी विष्णु ने इस चराचर जगत् को विभक्त कर अपने तीन ही कदम में तीनों लोकों—पृथिवी, अन्तरिक्ष तथा द्युलोक को नाप लिया तथा अग्नि-वायु एवं सूर्य रूप से सर्वत्र व्याप्त हो गये। इस विश्वव्यापी विष्णुपद में ही समस्त संसार है।

ॐ नमस्ते रुद्र मन्यव उतो त इषवे नमः। बाहुभ्यामुत ते नमः॥

ॐ ईश्वराय नमः।

मन्त्रार्थ—समस्त सांसारिक दुःखों को दूर करने वाले हे रुद्र! आपके क्रोध को प्रणाम है, आपके बाणों को प्रणाम है तथा आपकी दोनों भुजाओं को प्रणाम है।

ॐ आकृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यञ्च। हिरण्येन सविता रथेन देवो याति भुवनानि पश्यन्॥ इति सूर्याय यज्ञोपवीतं प्रदर्श्य।

मन्त्रार्थ—सबका प्रेरक सविता देवता स्वर्णमय रथ में आरूढ़ होकर कृष्ण वर्ण वाले अन्तरिक्ष पथ में पुनरावर्तन-क्रम से भ्रमण करते हुए देवता आदि को तथा मनुष्य आदि को अपने-अपने व्यापार में स्थापित करते हैं और सम्पूर्ण भुवनों को देखते हुए आगमन करते हैं।

ॐ आपो हिष्ठा मयो भुवस्तान उर्जे दधातन। महेरणाय चक्षसे॥१॥ यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयते ह नः। उशतीरिव मातरः॥२॥ तस्माऽअरङ्ग मामवो यस्य क्षयाय जिन्वथ। आपो जनयथा च नः॥३॥ इति त्रिभिरभिषिच्य दशकृत्वो गायत्र्याभिमन्त्र्य।

मन्त्रार्थ—हे जल! तुम वस्तुतः आरोग्यता देने वाले हो, अतः तुम सब हमें बल के लिए सहायता करो, जिससे हम आनन्द को देख सकें।।१।। तुम्हारा जो अत्यन्त कल्याणकारी रस है, उसका हमें यहाँ भागी बनाओ, जिस प्रकार माताएँ प्रेम से परिपूर्ण होकर अपने स्तनों का रस (दूध) अपने बालकों को दे देती हैं।।२।। जिसके दर्शन करने

के लिए तुम सब हमें प्रेरित करते हो, वह शीघ्रता से तुमको प्राप्त हो। हे जल! हमें उत्पादक शक्ति प्रदान करो।।३।।

यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत् सहजं पुरस्तात्।
आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः॥
यज्ञोपवीतमसि यज्ञस्य त्वा यज्ञोपवीतेनोपनह्यामि॥

मन्त्रार्थ—हे कुमार! यह अत्यन्त पवित्र यज्ञोपवीत सृष्टि के प्रारम्भ में प्रजापति ब्रह्मा के साथ ही उत्पन्न हुआ है। जो आयुष्य को बढ़ाने वाला है, तुम आयु, बल और तेज को देने वाले इस निष्कल्मष यज्ञोपवीत को पहनो। मैं तुम्हें यज्ञोपवीत से बाँधता हूँ।

निर्देश—उपर्युक्त मन्त्र पढ़कर आचार्य माणवक के दक्षिण हाथ को ऊपर उठवा कर वाम स्कन्ध के ऊपर यज्ञोपवीत को धारण करा दें, आचारतः यज्ञोपवीत को धारण कराते समय गणेशादि देवताओं का स्पर्श कराकर आचार्य के अतिरिक्त चार अन्य ब्राह्मण भी (कुल पाँच) यज्ञोपवीत का स्पर्श करते हैं, तदनन्तर माणवक दो बार आचमन करता है।

आचार्य माणवक को मृगचर्म उत्तरीय के रूप में धारण कराता है, यदि विस्तीर्ण मृगचर्म उत्तरीयार्थ सुलभ न हो, तो तीन या चार अङ्गुल चौड़े तथा चौबीस अङ्गुल लम्बे मृगचर्म को अखण्ड यज्ञोपवीत की तरह पहना दें। माणवक निम्न मन्त्रों को पढ़ता हुआ मृगचर्मादि धारण कर ले।

मन्त्रः—

ॐ मित्रस्य चक्षुर्द्धरुणं बलीयस्तेजो यशस्विस्थविर ँ समिद्धम्।
अनाहनस्यं वसनं जरिष्णुः परीदं वाज्यजिनं दधेऽहम्॥

मन्त्रार्थ—हे आचार्य! यह मृगचर्म भगवान् सूर्य का अत्यन्त बलवान् चक्षुस्वरूप है तथा तेज, यश एवं प्रभूत समृद्धि देने वाला अत्यन्त कोमल है, यही राजा और मुनि दोनों को विजयी बनाने वाला वस्त्र है।

आचार्यः माणवकाय तूष्णीं दण्डं प्रयच्छति, माणवको मन्त्रपूर्वकं दण्डं गृह्णाति। तत्र मन्त्रः—

ॐ यो मे दण्डः परापतद्वैहायसोऽधिभूम्याम्।
तमहं पुनराददे आयुषे ब्रह्मणे ब्रह्मवर्चसाय॥

मन्त्रार्थ—हे आचार्य! जो दण्ड आकाश से उत्पन्न होकर पृथिवी पर गिर पड़ा, उसको मैं अपने दीर्घायुष्य की वृद्धि के लिए और ब्रह्मचर्य के तेज की वृद्धि के लिए धारण करता हूँ।

निर्देश—माणवक दण्ड ग्रहण कर मन्त्रपूर्वक ऊपर उठाता है।

मन्त्रः—ॐ उच्छ्रयस्व वनस्पते ऊद्ध्वो मा पाह्य ँ हसः अस्य यज्ञस्योदृचः॥

मन्त्रार्थ—हे वनस्पतिसम्भूत दण्ड! तुम उन्नत हो और उन्नत होकर तुम इस यज्ञ की ऋक्-समाप्ति-पर्यन्त पाप से मेरी रक्षा करो।

निर्देश—आचार्य अपनी अञ्जलि में जल भर कर माणवक की अञ्जलि को तीन बार पूर्ण करता है, निम्नलिखित तीन मन्त्रों द्वारा—

१. ॐ आपो हिष्ठा मयो भुवस्तान उर्ज्जे दधातन। महेरणाय चक्षसे॥१॥

२. यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयते ह नः। उशतीरिव मातरः॥२॥

३. तस्माऽअरङ्गमामवो यस्य क्षयाय जिन्वथ। आपो जन यथा च नः॥

निर्देश—इसके बाद आचार्य द्वारा **'सूर्यमुदीक्षस्व'** ऐसी आज्ञा देने पर माणवक अञ्जलिस्थ जल को सूर्य देवता के लिए समर्पित

करता है तथा ऊपर दोनों बाहुओं को उठाकर निम्न मन्त्र से सूर्योपस्थान करता है।

मन्त्रः—ॐ तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतञ्जीवेम शरदः शतꣳ शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतम्भूयश्च शरदः शतात्।

मन्त्रार्थ—जो भगवान् सूर्य प्रतिदिन पूर्वदिशा में उदित होते हैं, वही देवताओं के परम प्रिय तथा संसार के स्वच्छ नेत्रस्वरूप हैं, उनके ही आशीर्वाद से हम सौ वर्ष तक देखें, सौ वर्ष तक जीवित रहें, सौ वर्ष तक अदीन रहकर कभी किसी से कुछ न माँगें और सौ वर्ष तक हमारी इन्द्रियाँ पुष्ट रहकर अपना-अपना कर्म करती रहें।

निर्देश—इसके बाद आचार्य माणवक के दक्षिण स्कन्ध के ऊपर से अपना दाहिना हाथ ले जाकर माणवक के हृदय का स्पर्श निम्न मन्त्र से करता है।

मन्त्रः—

ॐ मम व्रते ते हृदयं दधामि मम चित्तमनुचित्तन्ते अस्तु।
मम वाचमेकमना जुषस्व बृहस्पतिष्ट्वा नियुनक्तु मह्यम्॥

मन्त्रार्थ—हे बालक! मैं तुम्हारे हृदय को अपने नियमानुकूल बनाता हूँ, अब तुम्हारा चित्त मेरे चित्त के साथ एक समान हो जाय। तुम मेरे उपदेशवचन का एकाग्रचित्त होकर पालन करो। बृहस्पति तुम्हारे हृदय को मेरे हृदय से मिला दें, जिससे तुम्हारा और मेरा हृदय एक-सा हो जाय।

निर्देश—आचार्य माणवक के दाहिने हाथ का अँगूठा पकड़कर नाम आदि पूछता है। तद्यथा—

आचार्यः **'को नामासि'** (तुम्हारा नाम क्या है बालक!)

वटुः **'अमुकशर्माहं भो३'** (मैं अमुक नाम वाला हूँ आचार्य!)

आचार्यः **'कस्य ब्रह्मचार्यसि'** (तुम किसके ब्रह्मचारी हो?)

वटुः **'भवतः'** (आपका ही)

निर्देश—वटु के ऐसा कहने पर आचार्य **'इन्द्रस्य ब्रह्मचार्यसि'** इत्यादि मन्त्र पढ़ता है।

मन्त्रः—ॐ इन्द्रस्य ब्रह्मचार्यस्यग्निराचार्यस्तवाहमाचार्यस्तव अमुकशर्मन्।

मन्त्रार्थ—हे बालक! तुम इन्द्र के ब्रह्मचारी हो, तुम्हारा प्रथम आचार्य अग्नि है और दूसरा आचार्य मैं हूँ।

निर्देश—आचार्य बालक का स्पर्श कर मन्त्रपूर्वक उसे समस्त भूततत्त्वों को समर्पित करता है। तद्यथा—

मन्त्रः—प्रजापतये त्वा परिददामि, देवाय त्वा सवित्रे परिददामि, अद्भ्यस्त्वा औषधीभ्यः परिददामि, द्यावापृथिवीभ्यां त्वा परिददामि, विश्वेभ्यस्त्वा भूतेभ्यः परिददामि, सर्वेभ्यस्त्वा भूतेभ्यः परिददाम्यरिष्टयै॥

मन्त्रार्थ—हे बालक! मैं तुम्हारे समस्त अरिष्टों की निवृत्ति के लिये तुम्हें प्रजापति-ब्रह्मा, सविता, जल, औषधि, आकाश, पृथिवी, समस्त इन्द्रादि देवता तथा समस्त भूतों को समर्पित करता हूँ।

निर्देश—ततः बालक अग्नि की प्रदक्षिणा कर आचार्य के उत्तर की ओर पूर्वाभिमुख बैठ जाता है, आचार्य अग्न्यायतन के ईशानकोण पर ब्रह्मा का वरण करता है। तद्यथा वरण-सङ्कल्पः—

'ॐ अद्य उपनयनहोमकर्मणि कृताकृतावेक्षणादिब्रह्मकर्म कर्तुममुकगोत्रममुकशर्माणं ब्राह्मणं ब्रह्मत्वेन त्वामहं वृणे'। 'वृतोऽस्मि' इति ब्रह्मा वदेत्। इसके बाद आचार्य—

यथा चतुर्मुखो ब्रह्मा सर्ववेदधरः प्रभुः।
तथा त्वं मम यज्ञेऽस्मिन् ब्रह्मा भव द्विजोत्तम॥ प्रार्थना करे।

निर्देश—इस प्रकार ब्रह्मा का वरण करके उनको अग्नि के दक्षिण में पहले से कल्पित आसन पर बैठाना चाहिए। ब्रह्मा, वरण स्थल से दक्षिण पैर पहले रखकर अपने आसन पर जाकर चुपचाप बैठ जाँय। ब्रह्मा के अभाव में पचास कुशों से निर्मित प्रदक्षिण ग्रन्थि वाले ब्रह्मा को पूर्व या पश्चिम दिशा से लाकर अग्नि के दक्षिण में प्रकल्पित पीठादि आसन पर पूर्वाग्र कुश बिछाकर उस पर स्थापित कर दे।

कुशकण्डिका-विधि

आचार्य को अग्नि के उत्तर दिशा में प्रणीता-प्रणयन के लिये कुश के दो पूर्वाग्र आसन रखने चाहिए, पहला पश्चिम दूसरा उसके पूर्व दिशा में रखे। बारह अंगुल लम्बी, चार अंगुल चौड़ी तथा चार अंगुल गहरी काष्ठनिर्मित प्रणीता को पहले बायें हाथ में रखकर दाहिने हाथ में स्थित जलपात्र से उसमें जल भर दे, पुनः कुश-दर्भों से उसे आच्छादित कर ब्रह्मा का मुख देखकर दाहिने हाथ से पश्चिम वाले आसन पर रखकर तुरन्त पूर्व वाले आसन पर रख देवे।

पुनः अग्नि के चारों तरफ पूर्वादि दिशाओं में अग्नि से बारह अथवा पाँच अंगुल स्थान छोड़कर पूरब और पश्चिम में उदगग्र तथा उत्तर और दक्षिण में प्रागग्र चार-चार कुशाओं को बिछाना चाहिए। ईशान से प्रारम्भ कर ईशान तक परिस्तरण कर देने के बाद पुनः एक कुश से अप्रादक्षिण्य वृत्ति द्वारा ईशान से ईशान तक कुशाओं का स्पर्श कराता हुआ अग्नि में उस एक कुश को डाल देना चाहिए। याज्ञिक परिभाषा में इसे 'इतरथावृत्ति' कहा जाता है। पुनः आवश्यक पात्रों को रखने के लिये अग्नि के उत्तर अथवा पश्चिम में कुश बिछाना चाहिए, तथा उस पर प्रागग्र अथवा उदगग्र पात्रों को रखना चाहिये। तद्यथा—

पवित्रच्छेदनानि त्रीणि कुशास्तरणानि, द्वे पवित्रे साग्रे अनन्तर्भे प्रोक्षणीपात्रम्, आज्यस्थाली, सम्मार्जनकुशास्त्रयः पञ्च वा,

उपयमनकुशाः त्रिप्रभृतित्रयोदशपर्यन्ताः, समिधस्तिस्रः, स्रुवः खदिरः गव्यमाज्यं पूर्णपात्रम् (षट्पञ्चाशदधिकमुष्टिशत-द्वयपरिमितधान्यपूर्णम् अथवा बहुभोक्तुः पुरुषस्याहारपरिमितम्) कर्मोपयोगिनी दक्षिणा (गोर्ब्राह्मणस्य वर इत्युक्तो वरो वा) आवश्यकवस्तूनि यथा कांस्यपात्रं सतण्डुलम्, सुवर्णशलाका, अपेक्षितपूजासामग्री, शुष्कगोमयखण्डानि, समिधः, भिक्षापात्र-मित्यादि।

सबसे पहले बायें हाथ में दो कुशाओं को लेकर अग्रभाग से प्रादेशमात्र की सीमा पर उसे पकड़कर दाहिने हाथ में तीन स्थूल कुशाओं को लेकर, उस पर बायें हाथ के दो कुशाओं को प्रादक्षिण्यवृत्ति से लपेटकर दोनों शिराओं को दाहिने हाथ में तथा तीन कुशाओं की दोनों शिराओं को बायें हाथ में पकड़कर खींचना चाहिए, जिससे दोनों कुशाओं का छेदन हो जाय, प्रादेश-मात्र की दो कुशाओं को ग्रहण कर पवित्री-निर्माण के लिए ग्रन्थि बना ले तथा तीन कुशाओं का परित्याग कर दे।

ग्रन्थीकृत कुश-पवित्री को प्रणीता पात्र में रख दे तथा प्रोक्षणी-पात्र के समीप में लाकर किसी पात्रान्तर से जल भर कर उसमें पवित्री द्वारा प्रणीता के जल का सिञ्चन करना चाहिये, प्रणीता-पात्र में स्थित पवित्री को दोनों हाथों की अनामिका-अंगुष्ठ द्वारा पकड़कर प्रणीता के जल को ऊपर उछालना चाहिए (तीन बार)। तथा पवित्री को प्रोक्षणी के जल में रख देना चाहिए। पुनः बायें हाथ में प्रणीता-पात्र को लेकर दाहिने हाथ से उसे ढककर नासिका तक ले आकर दाहिने हाथ को उत्तान कर दे, तथा मध्यमा-अनामिका अंगुलियों के मध्य पर्व से जल को उछाल कर उसी जल से प्रोक्षणी-पात्र का प्रोक्षण करे।

प्रोक्षणी-पात्र में पूर्वतः स्थित पवित्री द्वारा समस्त आसादित वस्तुओं का प्रोक्षण एकैकशः करके असञ्चर देश में (प्रणीता-अग्नि के बीच में) प्रोक्षणी-पात्र को रख देना चाहिए। उसके बाद अग्नि के पश्चिम तरफ स्थापित आज्यस्थाली में गव्य, आज्य लेकर अग्नि

स्थण्डिल पर उत्तर की ओर से अंगारों को खींचकर उसी पर आज्य रख देवे। आज्य के आधा पिघल जाने पर जलते हुये उल्मुक (काष्ठ) से आज्य के चारों तरफ भ्रमण करा दे और उल्मुक को अग्नि में छोड़कर इतरथावृत्ति कर दे। पुनः दक्षिण हाथ से स्रुवा को अधोमुख तपाकर बायें हाथ में उत्तान धारण करे तथा दक्षिण हाथ से सम्मार्जन कुशाओं को लेकर उनके अग्रभाग से मूल से अग्र पर्यन्त तथा कुशमूल से स्रुवा के ऊपर से नीचे मूलपर्यन्त सम्मार्जन कर कुशाओं को अग्नि में डाल दे। इसके बाद प्रणीता के जल से स्रुवा का अभ्युक्षण कर पुनः तपाकर अपने दक्षिण की ओर कुशा पर रख दे। आज्य को अग्नि पर से उतार कर उत्तर दिशा में रखे, पुनः उसे अग्नि के पश्चिम में ले आये। वहाँ पर दोनों हाथों की अंगुष्ठ-अनामिका अंगुलियों द्वारा पूर्व पवित्री को ग्रहण कर आज्य का उत्पवन करे तथा अच्छी तरह निरीक्षण कर अपद्रव्य हो तो निकाल दे, पुनः प्रोक्षणी के जल का पवित्री के द्वारा उत्पवन कर उसी में पवित्री को रख दे।

उपयमन कुशाओं को दक्षिण हाथ से ग्रहण कर वाम हाथ में धारण करे तथा खड़े होकर घृताक्त तीन समिधाओं को प्रजापति देवता का ध्यान कर अग्नि में डाल दे। पवित्री सहित प्रोक्षणी के जल से ईशानादि से ईशान पर्यन्त प्रादक्षिण्य वृत्ति से सम्प्रोक्षण कर पुनः इतरथावृत्ति कर पवित्री को प्रणीता के जल में रख दे।

तदुपरान्त **'समुद्भवनामाग्ने सुप्रतिष्ठितो वरदो भव'** इस वाक्य से अग्नि की प्रतिष्ठा कर निम्न श्लोकद्वय से ध्यान कर अधोलिखित मन्त्र से पूजा करनी चाहिए। तद्यथा—

ॐ भूर्भुवः स्वः समुद्भवनाम्ने अग्नये नमः।

अग्निं प्रज्वलितं वन्दे जातवेदं हुताशनम्।
सुवर्णवर्णममलमनन्तं विश्वतोमुखम्॥

सर्वतः पाणिपादश्च सर्वतोऽक्षिशिरोमुखः।
विश्वरूपो महानग्निः प्रणीतः सर्वकर्मसु॥

इति ध्यात्वा मन्त्रेणाग्निं पूजयेत्। तद्यथा मन्त्रः—

ॐ चत्वारि शृङ्गा त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य।
त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महो देवो मर्त्याँ आविवेश॥

मन्त्रार्थ—यज्ञपुरुष के ब्रह्मा, उद्गाता, होता और अध्वर्यु चार शृंग हैं तथा ऋक्, यजुः, साम ये तीन चरण हैं। स्वर और छन्द यही दो शिर हैं तथा गायत्र्यादि सप्त छन्द ही इसके सात हाथ हैं, यह प्रातःसवन, माध्यन्दिन सवन तथा तृतीय सवन इन्हीं तीन सवनों (सत्रों) में बँधा रहता है, यही विविध कामनाओं की पूर्ति करता है तथा यज्ञ में अत्यन्त उच्च स्वर में शब्द करता है, ऐसा यह महादेव यज्ञपुरुष मानव मात्र के कल्याण के लिए इस मर्त्यलोक की कर्मभूमि में प्रविष्ट होकर स्थित है।

हवन-विधि

निर्देश—उक्त मन्त्र से अग्नि की पूजा कर दक्षिण पैर मोड़कर आचार्य मूलमध्य के मध्यभाग में स्रुवा को पकड़कर निम्न विधि से आज्याहुति दे।

विधिः—

ॐ प्रजापतये स्वाहा, इदं प्रजापतये न मम। (इति मनसा)

ॐ इन्द्राय स्वाहा, इदमिन्द्राय न मम (इति आधारः)

ॐ अग्नये स्वाहा, इदमग्नये न मम।

ॐ सोमाय स्वाहा, इदं सोमाय न मम। (इत्याज्यभागौ)

ॐ भूः स्वाहा इदमग्नये न मम।

ॐ भुवः स्वाहा इदं वायवे न मम।

ॐ स्वः स्वाहा इदं सूर्याय न मम। (एता महाव्याहृतयः)

(ततः सर्वप्रायश्चित्तार्थं पञ्चवारुणीहोममन्त्राः)

ॐ त्वन्नो अग्ने वरुणस्य विद्वान्देवस्य हेडोऽअवयासि सीष्ठाः। यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषाꣳसि प्रमुमुग्ध्यस्मत् स्वाहा॥ इदमग्निवरुणाभ्यां न मम।

मन्त्रार्थ—हे अग्ने! आप वरुण के क्रोध को जानने वाले हैं, अतः हम पर से उनके क्रोध के कारण को हटा दीजिये। आप सर्वश्रेष्ठ तथा अत्यन्त प्रकाशमान देवता होने के कारण प्रथम पूज्य एवं अग्रणी हैं, अतः हमें समस्त पापों से मुक्त कर दें।

ॐ सत्वन्नो अग्नेऽवमो भवोती नेदिष्ठोऽअस्याऽउषसो व्युष्टौ। अव यक्ष्व नो वरुण ꣳ रराणो व्रीहि मृडीक ꣳ सुहवो न एधि स्वाहा। इदमग्निवरुणाभ्यां न मम।

मन्त्रार्थ—हे अग्ने! आप आज प्रातःकाल से ही हमारे रक्षक बन जाँय, तथा हमारे अंगरक्षक की तरह अत्यन्त समीप में रहें, आप हमारे ऊपर प्रसन्न होकर कृपालु वरुण को हमारे लिए बुलावें, तथा हमारे पक्ष से उनका भजन करें, एतदर्थ आप शीघ्र ही हमारे पास आ जाँय।

ॐ अयाश्चाग्नेऽस्यनभिशस्तिपाश्च सत्यमित्त्वमया असि।
अया नो यज्ञं वहास्यया नो धेहि भेषज ꣳ स्वाहा॥
इदमग्नये अयसे न मम।

मन्त्रार्थ—हे अग्ने! आप शीघ्रगामी देवता हैं, पापरहित मनुष्य की रक्षा करने हेतु शीघ्र उपस्थित हो जाते हैं, अतः आप हमारे द्वारा दिये गये हवि द्रव्य को ग्रहण करें तथा यश के स्वामी वरुण देवता को उनका भाग प्रदान कर उन्हें सन्तुष्ट कर दें, जिससे सन्तुष्ट होकर वरुण-देव मुझे भी आरोग्य-सुख प्रदान करें।

ॐ ये ते शतं वरुण ये सहस्रं यज्ञियाः पाशा विततता महान्तः।
तेभिर्नो अद्य सवितोत विष्णुर्विश्वे मुञ्चन्तु मरुतः स्वर्काः स्वाहा॥

इदं वरुणाय सवित्रे विष्णवे विश्वेभ्यो देवेभ्यो मरुद्भ्यः स्वर्केभ्यश्च न मम।

मन्त्रार्थ—हे वरुणदेव! आपके बड़े-बड़े सैकड़ों-हजारों दैव पाश फैले हुए हैं, उन पाशों से सूर्य, विष्णु, मरुद्-गण तथा समस्त देवगण हमको छुड़ावें।

ॐ उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं विमध्यमꣳ श्रथाय।
अथा वयमादित्यव्रते तवानागसो अदितये स्याम स्वाहा॥
इदं वरुणायादित्यायादितये न मम।

मन्त्रार्थ—हे वरुणदेव! आपके जो तीन अधम-मध्यम-उत्तम प्रकार के पाश हैं, उन तीनों पाशों से हमारी रक्षा करो तथा हमारे ऊपर से उन सभी पाशों को हटा लो, जिससे हम सविता देवता के नियमानुसार रहकर अदिति के समान निष्पाप हो जाँय।

ऊँ प्रजापतये स्वाहा, इदं प्रजापतये न मम।
ऊँ अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा, इदमग्नये स्विष्टकृते न मम।

निर्देश—संस्रव प्राशन करके प्रणीता के जल में रखी गयी पवित्री से अपने शिर के ऊपर मार्जन कर पवित्री की ग्रन्थि खोलकर अग्नि में डाल दें और अग्नि के पश्चिम प्रणीता के जल को उलट दें। तदुपरान्त आचार्य निम्न वाक्य से ब्रह्मा को पूर्णपात्र का दान करे तथा वटु को उसके नियमों का उपदेश करे। तद्यथा—

गोत्रवर्णौ सङ्कीर्त्य—'अस्य कुमारस्य उपनयनाङ्गहोमकर्मणः सादगुण्यार्थमपूर्णपूरणार्थं च इदं पूर्णपात्रं ससुवर्णं ब्रह्मन् तुभ्यमहं सम्प्रददे'। इति पूर्णपात्रं दद्यात्।

तत आचार्यो वटुमनुशास्ति—

आचार्य—**ब्रह्मचार्यसि** (हे बालक! तुम मेरे ब्रह्मचारी हो)
माणवक—**असानि** (गुरुदेव! मैं आपका ब्रह्मचारी हूँ)
आचार्य—**दिवा मा सुषुप्थाः** (तुम दिन में शयन मत करना)
माणवक—**न स्वपानि** (गुरुदेव! मैं दिन में शयन नहीं करूँगा)

आचार्य—**वाचं यच्छ** (तुम अपनी वाणी पर संयम रखना)

माणवक—**यच्छानि** (गुरुदेव! मैं अपनी वाणी पर संयम रखूँगा)

आचार्य—**समिधमाधेहि** (तुम अग्नि में समिधाओं की आहुति देना)

माणवक—**आदधानि** (गुरुदेव, मैं अग्नि में समिधाधान करूँगा)

आचार्य—**अपोऽशान** (तुम सर्वदा आपोशानविधि[१] से अन्न-भक्षण करना)

माणवक—**अश्नानि** (गुरुदेव, मैं आपोशान-विधि से ही अन्न-भक्षण करूँगा)

गायत्री-दीक्षा—

आचार्य अब बालक को वेदारम्भ करने के लिए सबसे पहले गायत्री मन्त्र की दीक्षा देता है। गायत्री मन्त्र की दीक्षा शुभ लग्न एवं शुभ मुहूर्त तथा समस्त ग्रहों की अनुकूलता में दी जानी चाहिए, अतः एतदर्थ पिता आचार्य को सुवर्ण-दान करता है, तद्यथा सङ्कल्प—

देशकालादिगोत्रवर्णादींश्च सङ्कीर्त्य.. 'अस्य कुमारस्य सावित्रीग्रहणलग्नाद् अमुकामुकस्थानस्थितैः दुष्टग्रहैः संसूचित-दुष्टफलनिवृत्तिद्वारा शुभफलप्राप्तये आदित्यादिनवग्रहाणां प्रीतये च इदं सुवर्णं तन्निष्क्रयभूतद्रव्यं वा आचार्याय सम्प्रददे' इति दत्वा।

तदुपरान्त आचार्य, किसी ताम्र आदि नवीन पात्र में तण्डुल रखकर सुवर्ण की शलाका अथवा कुशमूल से प्रणव तथा व्याहृतिपूर्वक गायत्री मन्त्र को लिखकर गणेश एवं कुलदेवता के साथ उसकी पूजा माणवक से करावें। माणवक संकल्पपूर्वक गणपत्यादि देवता की पूजा कर आचार्य की पूजा के उपरान्त गायत्री अक्षरों की पूजा करे। तद्यथा संकल्प—

'गोत्रः शर्माहं मम ब्रह्मचर्यसिद्धिपूर्वकवेदाध्ययनाधिकार-गायत्र्युपदेशाङ्गतया विहितं गायत्रीपूजनम् आचार्यपूजनपूर्वकं गण-

१. आपोशान-विधि इसी ग्रन्थ के परिशिष्ट में देखें।

पत्यादिदेवतापूजनपुरस्सरं च करिष्ये' इति सङ्कल्पं कृत्वा क्रमेण पूजयेत्।

माणवक गन्धाक्षत, पुष्प, माला, दक्षिणादि से गुरु की पूजा कर उन्हें श्रीफलादि समर्पित कर अपने दक्षिणोत्तर हाथ से गुरु के दक्षिणोत्तर चरण को पकड़कर विनम्र होकर अभिवादन करे।

उक्त पूजनोपरान्त अग्नि के उत्तर में आचार्य (गुरु) पूर्वाभिमुख बैठकर अपने सामने पश्चिमाभिमुख बालक को बैठाकर किसी नवीन माङ्गलिक वस्त्र से वटु का आच्छादन कर उसके दक्षिण कर्ण में प्रणव तथा व्याहृतिपूर्वक गायत्री मन्त्र का तीन बार में उपदेश करे। प्रथम बार में एक-एक पाद का उच्चारण कर बालक से उच्चारण करावे, द्वितीय बार में आधी-आधी ऋचा को तथा तृतीय बार में सम्पूर्ण मन्त्र को साथ-साथ उच्चारण करायें। तद्यथा—

प्रथमवारम्—**'ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यम्'** इति प्रथमं पादं वाचयेत्, ततः **'भर्गो देवस्य धीमहि'** इति द्वितीयपादं श्रावयित्वा तमपि यथाशक्तिं वाचयेत्। ततः **'धियो यो नः प्रचोदयात्'** इति वाचयेत्।

द्वितीयवारम्—**'ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि'** इत्यर्धं च श्रावयित्वा यथाशक्ति वाचयित्वा **'धियो यो नः प्रचोदयात्'** इति द्वितीयमर्धं श्रावयित्वा यथाशक्ति वाचयेत्।

तृतीयवारम्—**ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्'** इति समग्रं मन्त्रं माणवकेन सहैवोच्चारयेत्।

मन्त्रार्थ—सम्पूर्ण विश्व को उत्पन्न करने वाले सविता देवता के उस सर्वश्रेष्ठ तेज का हम ध्यान करते हैं, जो हमारी बुद्धि को सत्कर्म की ओर प्रेरित करता है।

निर्देश—

यावद् ब्रह्मोपदेशो न तावत् सन्ध्यादिकं च न।
ततो मध्याह्नसन्ध्यादि सर्वकर्म समाचरेत्॥

इस जैमिनि वचन से जब तक गायत्री की दीक्षा न हो, सन्ध्यावन्दनादि नहीं करना चाहिए। गायत्री की दीक्षा मिल जाने पर मध्याह्नसन्ध्यावन्दनादि सभी कार्य प्रारम्भ कर देना चाहिए। अत: आचार्य को चाहिए कि दीक्षा के बाद मध्याह्नकाल उपस्थित होने पर ब्रह्मचारी को मध्याह्नसन्ध्या करावें तथा सायं-प्रात: सन्ध्योपासना की विधियों का उपदेश कर दें।

तदुपरान्त ब्रह्मचारी बालक अग्नि के पश्चिम में पूर्वाभिमुख बैठकर निम्नलिखित पाँच मन्त्रों द्वारा शुष्क गोमयखण्ड से अग्नि में आहुति प्रदान करे, यहाँ 'न मम' जैसा त्याग वाक्य न बोले। तद्यथा—

अग्नि-परिचर्या

१. ॐ अग्ने सुश्रवः सुश्रवसं मा कुरु।

मन्त्रार्थ—हे अग्ने! जिस प्रकार तुम उज्ज्वल कीर्ति वाले हो, उसी प्रकार मुझे भी शुभ कीर्ति वाला बनाओ।

२. ॐ यथा त्वमग्ने सुश्रवः सुश्रवा असि।

मन्त्रार्थ—हे अग्ने। जैसे तुम शुभ तेज से सम्पन्न हो।

३. ॐ एवं मा सुश्रवः सौश्रवसं कुरु।

मन्त्रार्थ—मुझे भी उसी शुभ तेज से युक्त करो।

४. ॐ यथा त्वमग्ने देवानां यज्ञस्य निधिपा असि।

मन्त्रार्थ—हे अग्ने! जिस प्रकार तुम देवताओं और यज्ञों के निधिपा-कोषाध्यक्ष हो, अर्थात् जैसे तुम यज्ञ में प्रदान की गयी समस्त देवताओं की आहुतियों को अपने पास संग्रहीत कर, प्रत्येक देवता के अंश को उसके पास सुरक्षित पहुँचा देते हो।

५. **ॐ एवमहं मनुष्याणां वेदस्य निधिपो भूयासम्।**

मन्त्रार्थ—उसी प्रकार मैं भी मनुष्यों का तथा वेदों का अधिकारी बनूँ, जिससे मैं वेदों के सत्य सनातन ज्ञान को प्रत्येक मनुष्य तक यथावत् पहुँचा सकूँ।

निर्देश—इस प्रकार पाँच गोमयखण्ड अग्नि में डालकर जल से अग्नि का पर्युक्षण कर ब्रह्मचारी घृताक्त एक समिधा को निम्न मन्त्र से अग्नि में डालता है। तद्यथा मन्त्रः—

ॐ अग्नये समिधमाहार्षं बृहते जातवेदसे। यथा त्वमग्ने समिधा समिध्यसे एवमहमायुषा मेधया वर्चसा प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन समिन्धे जीवपुत्रो ममाचार्यो मेधाव्यहमन्यनिराकरिष्णुर्यशस्वी तेजस्वी ब्रह्मवर्चस्यन्नादो भूयासꣳ स्वाहा।

मन्त्रार्थ—हे अग्निदेव! मैं तुम्हारे लिए समिधा लाया हूँ। जिस प्रकार तुम मेरे द्वारा दी गयी समिधा से प्रज्वलित होकर अत्यन्त तेजोमय स्वरूप धारण करते हो, उसी प्रकार मैं भी तुम्हारे द्वारा प्रदत्त आयु, बुद्धि, वर्चस, तेज, सन्तति, गौ आदि पशु तथा ब्रह्मतेज से प्रकाशमान हो जाऊँ। मेरे आचार्य दीर्घायु पुत्र वाले तथा विशिष्ट बुद्धि वाले हों। मैं प्रतिदिन यज्ञ करने वाला होऊँ। मैं तुम्हारे प्रसाद से आयुष्मान्, यशस्वी, तेजस्वी, ब्रह्मतेज से युक्त तथा अन्न का दान करने वाला बनूँ।

निर्देश—इसी मन्त्र से दूसरी तथा तीसरी समिधा का भी अग्नि में आधान कर पूर्ववत् अपने आसन पर बैठकर **'अग्ने सुश्रवः'** इत्यादि पाँच मन्त्रों से शुष्क गोमयखण्डों द्वारा पुनः अग्नि का परिसमूहन करे तथा पूर्ववत् जल से पर्युक्षण कर मौन रहते हुए दोनों हाथों को धोकर मुख पोछ ले तथा अग्नि के ताप से ललाटादि चिबुकान्त (ललाट से होठ के नीचे तक) सम्मार्जन करे और प्रति सम्मार्जन में क्रमशः निम्न मन्त्र बोले। तद्यथा मन्त्रः—

ॐ तनूपा अग्नेऽसि तन्वं मे पाहि (हे अग्ने! तुम शरीर के रक्षक हो, अतः मेरे शरीर की रक्षा करो)।

ॐ आयुर्दा अग्नेऽस्यायुर्मे देहि (तुम आयु के देने वाले हो, अतः मुझे दीर्घ आयु दो)।

ॐ वर्चोदा अग्नेऽसि वर्चो मे देहि (तुम तेज को देने वाले हो, अतः मुझे तेजस्वी बनाओ)।

ॐ अग्ने यन्मे तन्वा ऊनं तन्म आपृण (हे अग्ने! मेरे शरीर में जो कुछ भी कमी हो, उसे तुम पूरा कर दो)।

ॐ मेधाम्मे देवः सविता आदधातु (सविता देवता मुझे मेधाशक्ति प्रदान करें)।

ॐ मेधाम्मे देवी सरस्वती आदधातु (देवी सरस्वती मुझे सद्बुद्धि प्रदान करें)।

ॐ मेधामश्विनौ देवावाधत्तां पुष्करस्रजौ (कमल की माला धारण किये दोनों अश्विनीकुमार मुझे सदसद्विवेकिनी बुद्धि प्रदान करें)।

निर्देश—अब निम्न मन्त्रों से ब्रह्मचारी यथानाम शरीराङ्गों का स्पर्श करता है। तद्यथा—

ॐ अङ्गानि च म आप्यायन्ताम् (मेरे शरीर के सभी अंग सम्पुष्ट होवें) (शिर से पैर तक सभी अङ्गों का स्पर्श करता है)।

ॐ वाक् च म आप्यायताम् (मेरी वाणी समृद्ध हो) (अपने मुख का स्पर्श करे)।

ॐ प्राणाश्च म आप्यायन्ताम् (मेरे प्राण समृद्ध हों) (नासिका के दोनों छिद्रों का स्पर्श करें)।

ॐ चक्षुश्च म आप्यायताम् (मेरे चक्षु समृद्ध हों) (अपनी दोनों आँखों का स्पर्श करे)।

ॐ श्रोत्रञ्च म आप्यायताम् (मेरे श्रोत्र समृद्ध हों) (अपने दोनों कानों का स्पर्श करे)।

ॐ यशो बलं च म आप्यायताम् (मेरे यश और बल की वृद्धि हो) (अपने बाहुओं का परस्पर स्पर्श करे)।

निर्देश—इसके बाद स्रुवा से भस्म निकालकर मन्त्रपूर्वक क्रमशः ललाट, ग्रीवा, दक्षिण बाहु, हृदय में लगावे। तद्यथा—

ॐ 'त्र्यायुषं जमदग्ने' इति ललाटे (महर्षि जमदग्नि की (बाल्य-युवा-जरा) तीनों अवस्थाओं की जो आयु)।

ॐ 'कश्यपस्य त्र्यायुषम्' इति ग्रीवायाम् (महर्षि कश्यप की तीनों अवस्था की जो आयु)

ॐ 'यद्देवेषु त्र्यायुषम्' इति दक्षिणबाहुमूले (देवतागणों की तीनों अवस्था की जो आयु)

ॐ 'तन्नो अस्तु त्र्यायुषम्' इति हृदि (वह तीनों आयु मुझे प्राप्त हो जाय)।

निर्देश—भस्म धारण कर ब्रह्मचारी अपने प्रथम आचार्य अग्निदेव को अपने गोत्र-प्रवर-वेदशाखादि का उच्चारण करता हुआ, अभिवादन करता है तथा द्वितीय आचार्य उपनेता गुरु जी का दाहिने हाथ से दायाँ पैर एवं बायें हाथ से बायाँ पैर पकड़कर गोत्र-प्रवरादि का उच्चारण कर अभिवादन करता है। तद्यथा—

अग्नेरभिवादनम्—**'अमुकगोत्रोऽमुकप्रवरः यजुर्वेदान्तर्गत-अमुकशाखाध्यायी अमुकशर्माऽहम् अग्ने! त्वामभिवादये भोः३'**।

गुरोरभिवादनम्—**'अमुकगोत्रः अमुकप्रवरः यजुर्वेदान्तर्गत-अमुकशाखाध्यायी अमुकशर्माऽहं गुरो! त्वामभिवादये भोः३'**।

भिक्षाचरणम्

इसके बाद ब्रह्मचारी भिक्षापात्र लेकर दण्ड ग्रहण कर खड़े होकर ऐसी तीन स्त्रियों से भिक्षा माँगता है, जो भिक्षा का निषेध न करती हों, तुरन्त ब्रह्मचारी को भिक्षा दे सकती हों। उसमें ब्रह्मचारी आचार के अनुसार सबसे पहले अपनी माता से भिक्षा माँगता है।

निर्देश—इसके बाद ब्रह्मचारी का पिता आचार्य को संकल्पपूर्वक दक्षिणा देवे तथा ब्राह्मण-भोजन का संकल्प करे और आचार्य अग्नि की पुनः पूजा कर विसर्जन करके ब्रह्मचारी को ब्रह्मचर्य के नियमों का उपदेश करे। तद्यथा—

ततो होमदक्षिणा—**'अस्य कुमारस्योपनयनाङ्गहोमकर्मणः साङ्गतासिद्ध्यर्थमिमां दक्षिणां कर्मकारयित्रे आचार्याय दातुमहमुत्सृजे'।**

ब्राह्मणभोजनस्य सङ्कल्पः—**'अस्य कुमारस्य कृतस्योपनयनाङ्ग-हवनकर्मणः साद्गुण्यार्थं द्वे शते शतं वा दश वा यथाशक्ति वा ब्राह्मणान् भोजयिष्ये'।**

ततः समुद्भवनामानमग्निं सम्पूज्य विसृजेत्।

ब्रह्मचर्यनियमाः

१. **अधःशायी स्यात्** (ब्रह्मचारी को नीचे भूमि पर सोना चाहिए)।

२. **अक्षारलवणाशी स्यात्** (क्षार एवं लवणयुक्त भोजन नहीं करना चाहिए)।

३. **समावर्तनपर्यन्तं दण्डधारणम्, अग्निपरिचरणं प्रत्यहं समिदाहरणं, गुरुशुश्रूषा भिक्षाचर्यं च कुर्यात्।**

(समावर्तनपर्यन्त ब्रह्मचारी को प्रत्येक दिन दण्डधारणपूर्वक अग्नि में समिदाधान करना चाहिए। समिधा एवं शुष्क गोमयखण्ड का आहरण भी प्रत्येक दिन करना चाहिए तथा प्रतिदिन गुरुसेवा एवं भिक्षाचरण करना चाहिए।

४. **'मधु मांसं मज्जनम्, उपर्यासनं, स्त्रीगमनमनृतवदनमदत्तादानम् एतानि वर्जयेत्'।**

(ब्रह्मचारी को मधु-मांस का भक्षण, नदी में डुबकी लगाना एवं तैरना, चारपाई आदि ऊपर आसन पर सोना, स्त्रियों के बीच में जाना,

असत्य भाषण करना, विना किसी के दिये कुछ ले लेना आदि कार्य नहीं करना चाहिए)।

५. **'ताम्बूलम्, अभ्यङ्गम्, अञ्जनम्, आदर्शं, छत्रोपानहौ, कांस्यपात्रभोजनादीनि च वर्जयेत्'।**

(ब्रह्मचारी को पान खाना, उबटन लगाना, आँख में अञ्जन लगाना, शीशा में मुख देखना, छाता लेना, जूता पहनना और कांस्य पात्र में भोजन करना आदि कर्म नहीं करना चाहिए)।

६. **'आचार्येणाहूतः उत्थाय शृणुयात्'** (आचार्य के बुलाने पर ब्रह्मचारी को अपने स्थान पर खड़े होकर उत्तर देना चाहिए)।

७. **'शयानं चेद् आसीनः, आसीनञ्चेत्तिष्ठन्, तिष्ठन्तं चेदभिक्रामन्, अभिक्रामन्तं चेद् अभिधावन् प्रतिवचनं दद्यात्।**

(आचार्य के बुलाने पर यदि ब्रह्मचारी सोया हो तो बैठकर, बैठा हो तो खड़े होकर, खड़ा हो तो पास में जाकर, पास में आ रहा हो तो दौड़कर उत्तर देना चाहिए)।

८. **'स एवं वर्तमान इहैव स्वर्गे वसति'।**

(इस प्रकार आचरण करने वाला ब्रह्मचारी धरती पर रहकर स्वर्ग में रहता है और ब्रह्मचर्य व्रत को पूरा कर संसार में एक कीर्त्तिमान् स्थापित करता है)।

।। इत्युपनयनसंस्कारप्रयोगः।।

वेदारम्भ-संस्कार-प्रयोग

निर्देश—आचार्य ब्रह्मचारी को गायत्री दीक्षा के बाद ब्रह्मचर्य नियमों के परिपालन का उपदेश देता है तथा कुछ दिनों तक ब्रह्मचारी की दिनचर्या को यथोपदिष्ट नियमानुसार करवाता है, ब्रह्मचारी के व्रतपालन से सन्तुष्ट होकर आचार्य शुभ मुहूर्त में वेदारम्भ संस्कार करता है। इसके लिए आचार्य ब्रह्मचारी से गणेशादि समस्त देवताओं का पूजन उपनयन के समान ही कराकर अलग वेदी पर समुद्भव नामक अग्नि की स्थापना संकल्पपूर्वक करता है, तद्यथा—

गोत्रवर्णौ सङ्कीर्त्य 'अस्य माणवकस्य वेदारम्भसंस्कारकर्मणि पञ्चभूसंस्कारपूर्वकं समुद्भवनामकमग्निं स्थापयिष्ये'।

निर्देश—आचार्य संकल्प करने के उपरान्त पञ्चभू-संस्कारपूर्वक अग्नि की स्थापना करे तथा ब्रह्मवरण एवं पूर्वोक्त प्रकार से कुशकण्डिका करके अग्नि की पूजा ब्रह्मचारी से करवाये (यहाँ तक की समस्त विधियाँ उपनयन के समान ही समझनी चाहिए, विधि-निर्देश एवं मन्त्रार्थ वहाँ से ही जान लेना चाहिए)।

अग्निस्थापनम्

ॐ अग्निं दूतं पुरोदधे हव्यवाहमुपब्रुवे। देवाँ आसादयादिह।। इति मन्त्रेणाग्निं स्थापयेत्। तद्रक्षार्थं तदुपरि किञ्चित् काष्ठादिकं निदध्याद् उपधमेच्च। ततः अग्न्यायतनादीशान्यां ब्रह्मवरणं कुर्यात्, तद्यथा— **'देशकालौ सङ्कीर्त्य अमुकगोत्रः अमुकशर्मा अस्मिन् वेदारम्भसंस्कारहवनकर्मणि कृताकृतावेक्षणादिब्रह्मकर्म कर्तुम् अमुकगोत्रममुकशर्माणं ब्राह्मणमेभिर्वरणद्रव्यैर्ब्रह्मत्वेन त्वामहं वृणे'।** **ॐ 'वृतोऽस्मि'** इति ब्रह्मा वदेत्।

ततः आचार्यः कृताञ्जलिः ब्रह्माणं प्रार्थयेत्, तद्यथा—

यथा चतुर्मुखो ब्रह्मा सर्ववेदधरः प्रभुः ।
तथा त्वं मम यज्ञेऽस्मिन् ब्रह्मा भव द्विजोत्तम ॥

ततः उपनयनवत् कुशकण्डिकां कृत्वा अग्निपूजनं कुर्यात्। तद्यथा—

ततः **'समुद्भवनामाग्ने सुप्रतिष्ठितो वरदो भव'** इति प्रतिष्ठाप्य ध्यायेत्—**'ॐ भूर्भुवः स्वः समुद्भवनाम्ने अग्नये नमः'।**

अग्निं प्रज्वलितं वन्दे जातवेदं हुताशनम् ।
सुवर्णवर्णममलमनन्तं विश्वतोमुखम् ॥
सर्वतः पाणिपादश्च सर्वतोऽक्षिशिरोमुखः ।
विश्वरूपो महानग्निः प्रणीतः सर्वकर्मसु ॥

ॐ चत्वारि शृङ्गा त्रयो अस्य पादाः द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य।
त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महो देवो मर्त्याँ आविवेश॥

इति मन्त्रैरग्निं सम्पूज्य दक्षिणं जान्वाच्य कुशेन दक्षिणबाहौ ब्रह्मणा अन्वारब्धः आचान्तो मौनी मूलमध्यभागयोर्मध्येन स्रुवं गृहीत्वा जुहुयात्।

तत्रादौ—'इदमाज्यं तत्तद्देवतायै मया परित्यक्तं यथादैवतमस्तु न मम' इति त्यागं पूर्वमेव कुर्यात्।

ततः **'वेदारम्भकर्मणि समुद्भवनामाग्नेः पूजनं करिष्ये'** इति सङ्कल्प्य सम्पूज्य स्वस्योत्तरतो ब्रह्मचारिणमुपवेश्य दक्षिणजान्वाच्य ब्रह्मणाऽन्वारब्ध आज्याहुतीर्जुहुयात्।

हवन-विधिः

ॐ प्रजापतये स्वाहा, इदं प्रजापतये न मम।

ॐ इन्द्राय स्वाहा, इदमिन्द्राय न मम।

ॐ अग्नये स्वाहा, इदमग्नये न मम।

ॐ सोमाय स्वाहा, इदं सोमाय न मम।

ततः अन्वारब्धं त्यक्त्वा जुहुयात्, आदौ यजुर्वेदाहुतयः—

ॐ अन्तरिक्षाय स्वाहा, इदमन्तरिक्षाय न मम।

ॐ वायवे स्वाहा, इदं वायवे न मम।

ॐ ब्रह्मणे स्वाहा, इदं ब्रह्मणे न मम।

ॐ छन्दोभ्यः स्वाहा, इदं छन्दोभ्यो न मम।

अथ ऋग्वेदाहुतयः—

ॐ पृथिव्यै स्वाहा, इदं पृथिव्यै न मम।

ॐ अग्नये स्वाहा, इदमग्नये न मम।

ॐ ब्रह्मणे स्वाहा, इदं ब्रह्मणे न मम।

ॐ छन्दोभ्यः स्वाहा, इदं छन्दोभ्यो न मम।

अथ सामवेदाहुतयः—

ॐ दिवे स्वाहा, इदं दिवे न मम।

ॐ सूर्याय स्वाहा, इदं सूर्याय न मम।

ॐ ब्रह्मणे स्वाहा, इदं ब्रह्मणे न मम।

ॐ छन्दोभ्यः स्वाहा, इदं छन्दोभ्यो न मम।

अथ अथर्ववेदाहुतयः—

ॐ दिग्भ्यः स्वाहा, इदं दिग्भ्यो न मम।

ॐ चन्द्रमसे स्वाहा, इदं चन्द्रमसे न मम।

ॐ ब्रह्मणे स्वाहा, इदं ब्रह्मणे न मम।

ॐ छन्दोभ्यः स्वाहा, इदं छन्दोभ्यो न मम।

सामान्याहुतयः—

ॐ प्रजापतये स्वाहा, इदं प्रजापतये न मम।

ॐ देवेभ्यः स्वाहा, इदं देवेभ्यो न मम।

ॐ ऋषिभ्यः स्वाहा, इदं ऋषिभ्यो न मम।

ॐ श्रद्धायै स्वाहा, इदं श्रद्धायै न मम।

ॐ मेधायै स्वाहा, इदं मेधायै न मम।

ॐ सदसस्पतये स्वाहा, इदं सदसस्पतये न मम।

ॐ अनुमतये स्वाहा, इदमनुमतये न मम।

पुनः ब्रह्मणाऽन्वारब्धः—

ॐ भूः स्वाहा, इदमग्नये न मम।

ॐ भुवः स्वाहा, इदं वायवे न मम।

ॐ स्वः स्वाहा, इदं सूर्याय न मम।

ॐ त्वन्नो अग्ने वरुणस्य विद्वान्
देवस्य हेडो अव यासिसीष्ठाः।
यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो
विश्वा द्वेषाꣳसि प्रमुग्ध्यस्मत्स्वाहा॥
इदमग्नीवरुणाभ्यां न मम।

ॐ स त्वन्नो अग्नेऽवमो भवोती
नेदिष्ठो अस्या उषसो व्युष्टौ।
अव यक्ष्व नो वरुणꣳ रराणो
व्रीहि मृडीकꣳ सुहवो न एधि स्वाहा॥
इदमग्नीवरुणाभ्यां न मम।

ॐ अयाश्चाग्नेऽस्यनभिशस्ति पाश्च सत्यमित्वमया असि।
अया नो यज्ञं वहास्यया नो धेहि भेषजꣳ स्वाहा॥
इदमग्नये अयसे न मम।

ॐ ये ते शतं वरुण ये सहस्रं
यज्ञियाः पाशा विततता महान्तः।
तेभिर्नो अद्य सवितोत विष्णुर्विश्वे
मुञ्चन्तु मरुतः स्वर्काः स्वाहा॥

इदं वरुणाय सवित्रे विष्णवे विश्वेभ्यो देवेभ्यो मरुद्भ्यः स्वर्केभ्यश्च न मम।

ॐ उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं विमध्यमꣳ श्रथाय।
अथा वयमादित्यव्रते तवानागसो अदितये स्याम स्वाहा॥

इदं वरुणायादित्यायादितये न मम।

ॐ प्रजापतये स्वाहा, इदं प्रजापतये न मम।

ॐ अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा, इदमग्नये स्विष्टकृते न मम।

ततः संस्रवप्राशनम्। मार्जनम्। अग्नौ पवित्रप्रतिपत्तिः। प्रणीता-विमोकः। पूर्णपात्रदानम्। तद्यथा—

"अमुकगोत्रः अमुकशर्मा वेदारम्भाङ्गहोमकर्मणः साङ्गफल-सिद्धये अपूर्णपूरणार्थमिदं पूर्णपात्रं प्रजापतिदैवतं यथानामगोत्राय ब्राह्मणाय तुभ्यमहं सम्प्रददे" इति दद्यात्। ब्रह्मा च तं गृहीत्वा—

ॐ अक्रन् कर्म कर्मकृतः सह वाचा मयोभुवा।
देवेभ्यः कर्म कृत्वा तं प्रेतवाचा स चाभुवः॥

इति आशिषं दद्यात्।

वेदारम्भ-विधिः

निर्देशः—तदनन्तरं ब्रह्मचारी **"अमुकगोत्रः अमुकशर्माहं वेदारम्भकर्मणः पूर्वाङ्गत्वेन सरस्वती-विष्णु-लक्ष्मी-यजुर्वेद-गुरूणां पूजनं करिष्ये"** इस प्रकार संकल्प कर तत्तद्देवताओं एवं गुरु जी की यथोपलब्धोपचार से पूजा कर प्रणवव्याहृतिपूर्वक गायत्री मन्त्र पढ़ने के उपरान्त अपनी वेदशाखा के मन्त्र का उच्चारण गुरुमुख से सुनने के बाद करना चाहिए।

अथ वेदारम्भः

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्॥

शुक्लयजुर्वेदारम्भः

ॐ इषे त्वोर्ज्जे त्वा व्वायवस्थ देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्म्मण आप्यायध्वमघ्न्या इन्द्राय भागं प्रजावतीरनमीवा अयक्ष्मा मा वस्तेन ईशत माघशंसो ध्रुवा अस्मिन् गोपतौ स्यात् बह्वीर्यजमानस्य पशून् पाहि॥

ऋग्वेदारम्भः

ॐ अग्निमीडे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्।

होतारं रत्नधातमम्॥

सामवेदारम्भः

ॐ अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये।

निहोता सत्सि बर्हिषि॥

अथर्ववेदारम्भः

ॐ शन्नो देवीरभीष्टय आपो भवन्तु पीतये

शंयोरभिस्रवन्तु नः॥

आचाराद् अस्मिन्नवसरे माणवकं वेदपाठार्थं वाराणसीं प्रस्थापयन्ति। ततः **'कृतस्य वेदारम्भकर्मणः साङ्गतासिद्ध्यर्थमाचार्याय दक्षिणां तुभ्यमहं सम्प्रददे'** इति दत्वा **'कृतस्य वेदारम्भकर्मणः समृद्ध्यर्थं दश यथाशक्ति वा ब्राह्मणान् भोजयिष्ये'**। इति सङ्कल्पयेत्।

अध्येतृ-नियमाः—आचार्येणाहूत उत्थाय प्रतिवचनं दद्यात्। शयानं चेदासीनः, आसीनं चेत्तिष्ठन्, तिष्ठन्तं चेत् गच्छन्, गच्छन्तं चेदभिधावन् प्रतिशृणुयात्। ततः समुद्रवनामाग्निं सम्पूज्य विसृजेत्।

॥ इति वेदारम्भसंस्कारप्रयोगः॥

समावर्तन-संस्कार-प्रयोग

पारस्कर-गृह्यसूत्र के अनुसार समावर्तन-संस्कार में भी वेदारम्भ एवं उपनयन-संस्कार में विहित अधिकांश विधियों को पुनरावर्तित किया जाता है। वेदाध्ययन पूर्ण कर ब्रह्मचारी अपने ब्रह्मचर्य व्रत की सम्पूर्ति करता है तथा द्वितीय आश्रम में जाने के लिये गुरु से अनुमति चाहता है। गृह्यसूत्रों में ब्रह्मचर्य व्रतनिवर्तक कर्म को ही समावर्तन शब्द से कहा गया है। इसमें ब्रह्मचारी स्नान करने की प्रार्थना अपने आचार्य से करता है तथा उनकी आज्ञा प्राप्त होने पर वैश्वानर नामक अग्नि की स्थापना 'पञ्चभू' संस्कार के द्वारा करके कुशकण्डिका के द्वारा होम-विधि सम्पन्न करता है। तदनन्तर अग्नि-परिसमूहन एवं समिदाधान करके अङ्ग-प्रोक्षण, भस्म-धारण तथा देवता, गुरु का अभिवादन करता है, तदनन्तर आठ प्रतिष्ठित कुम्भों के जल से अपने शिर पर अभिषेक करता है, इसके बाद मेखला, दण्ड, मृगचर्म का मन्त्रपूर्वक परित्याग कर सूर्योपस्थान करता है तथा अपने शरीर को विविध वस्त्रालंकारों से विभूषित कर गृहस्थ धर्म के अनुसार शास्त्रोक्त विधियों का परिपालन करता है। आचार्य उसे गृहस्थ धर्म का उपदेश करते हैं। इन सारी विधियों का प्रयोग निम्नलिखित रूप में किया जाता है।

संस्कारविधिः

ब्रह्मचारी—'अमुकगोत्रः अमुकशर्मा स्नानाधिकारसिद्धये गोनिष्क्रयभूतं सुवर्णं रजतं वा आचार्याय तुभ्यमहं सम्प्रददे' इति गुरवे प्रदाय **'भो गुरो स्नास्यामि'** इति सम्प्रार्थ्य **'स्नाहि'** इत्यनुज्ञातः समावर्तनं कुर्यात्।

निर्देश—आचार्य समावर्तन-संस्कार के निमित्त अलग वेदी का निर्माण कराकर, पूर्वाभिमुख बैठकर अपने दक्षिण की ओर उत्तराभिमुख

ब्रह्मचारी को बैठाकर गणेशादि समस्त आवाहित देवताओं का पूजन कर पञ्चभूसंस्कारपूर्वक वैश्वानर नामक अग्नि की स्थापना करता है। (पञ्चभूसंस्कार एवं कुशकण्डिका की विधि उपनयन-संस्कार में पूर्णरूप से दी गयी है, तदनुसार यहाँ भी सम्पन्न कर लेना चाहिए)।

ततो ब्रह्मवरणस्य सङ्कल्पः—

'अस्य वटोः समावर्तनाङ्गहोमकर्मणि एभिर्वरणद्रव्यैर्गोत्रममुक-शर्माणं ब्रह्माणं त्वामहं वृणे' इति वृत्वा—

यथा चतुर्मुखो ब्रह्मा सर्ववेदधरः प्रभुः।

तथा त्वं मम यज्ञेऽस्मिन् ब्रह्मा भव द्विजोत्तम॥ इति प्रार्थयेत्।

उपनयनवत् कुशकण्डिकां कृत्वा **''वैश्वानरनामाग्ने सुप्रतिष्ठिते वरदो भव''** इति प्रतिष्ठाप्य ध्यायेत् पूजयेच्च। तद्यथा—

'ॐ भूर्भुवः स्वः वैश्वानरनाम्ने अग्नये नमः'।

अग्निं प्रज्वलितं वन्दे जातवेदं हुताशनम्।

सुवर्णवर्णममलमनन्तं विश्वतोमुखम्॥

सर्वतः पाणिपादश्च सर्वतोऽक्षिशिरोमुखः।

विश्वरूपो महानग्निः प्रणीतः सर्वकर्मसु॥

ॐ चत्वारि शृङ्गा त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य।

त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महो देवो मर्त्याँ आविवेश॥

इति मन्त्रैरग्निं सम्पूज्य दक्षिणं जान्वाच्य कुशेन दक्षिणबाहौ ब्रह्मणाऽन्वारब्ध आचान्तो मौनी मूलमध्यभागयोर्मध्येन स्रुवं गृहीत्वा जुहुयात्।

होम-विधिः

ॐ प्रजापतये स्वाहा, इदं प्रजापतये न मम। (इति मनसोच्चारयेत्)

ॐ इन्द्राय स्वाहा, इदमिन्द्राय न मम।

ॐ अग्नये स्वाहा, इदमग्नये न मम।

ॐ सोमाय स्वाहा, इदं सोमाय न मम।

(अन्वारम्भं त्यक्त्वा यथापूर्वं यजुर्वेदाद्याहुतयः होतव्याः)

यजुर्वेदाहुतयः—

ॐ अन्तरिक्षाय स्वाहा, इदमन्तरिक्षाय न मम।

ॐ वायवे स्वाहा, इदं वायवे न मम।

ॐ ब्रह्मणे स्वाहा, इदं ब्रह्मणे न मम।

ॐ छन्दोभ्यः स्वाहा, इदं छन्दोभ्यो न मम।

ऋग्वेदाहुतयः—

ॐ पृथिव्यै स्वाहा, इदं पृथिव्यै न मम।

ॐ अग्नये स्वाहा, इदमग्नये न मम।

ॐ ब्रह्मणे स्वाहा, इदं ब्रह्मणे न मम।

ॐ छन्दोभ्यः स्वाहा, इदं छन्दोभ्यो न मम।

सामवेदाहुतयः—

ॐ दिवे स्वाहा, इदं दिवे न मम।

ॐ सूर्याय स्वाहा, इदं सूर्याय न मम।

ॐ ब्रह्मणे स्वाहा, इदं ब्रह्मणे न मम।

अथर्ववेदाहुतयः—

ॐ दिग्भ्यः स्वाहा, इदं दिग्भ्यो न मम।

ॐ चन्द्रमसे स्वाहा, इदं चन्द्रमसे न मम।

ॐ ब्रह्मणे स्वाहा, इदं ब्रह्मणे न मम।

ॐ छन्दोभ्यः स्वाहा, इदं छन्दोभ्यो न मम।

सामान्याहुतयः—

ॐ प्रजापतये स्वाहा, इदं प्रजापतये न मम।

ॐ देवेभ्यः स्वाहा, इदं देवेभ्यो न मम।

ॐ ऋषिभ्यः स्वाहा, इदं ऋषिभ्यो न मम।

ॐ श्रद्धायै स्वाहा, इदं श्रद्धायै न मम।

ॐ मेधायै स्वाहा, इदं मेधायै न मम।

ॐ सदसस्पतये स्वाहा, इदं सदसस्पतये न मम।

ॐ अनुमतये स्वाहा, इदमनुमतये न मम।

पुन ब्रह्मणाऽन्वारब्धः—

ॐ भूः स्वाहा, इदमग्नये न मम।

ॐ भुवः स्वाहा, इदं वायवे न मम।

ॐ स्वः स्वाहा, इदं सूर्याय न मम।

ॐ त्वन्नो अग्ने वरुणस्य विद्वान् देवस्य हेडो अव यासिसीष्ठाः।

यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषाꣳसि प्रमुमुग्ध्यस्मत्स्वाहा॥ इदमग्निवरुणाभ्यां न मम।

ॐ स त्वन्नो अग्नेऽवमो भवोती नेदिष्ठोऽअस्या उषसो व्युष्टौ।

अव यक्ष्व नो वरुणꣳ रराणो व्रीहि मृडीकꣳ सुहवो न एधि स्वाहा॥ इदमग्निवरुणाभ्यां न मम।

ॐ अयाश्चाग्नेऽस्यनभिशस्तिपाश्च सत्यमित्वमया असि।

अया नो यज्ञं वहास्यया नो धेहि भेषजꣳ स्वाहा॥

इदमग्नये अयसे न मम।

ॐ ये ते शतं वरुण ये सहस्रं यज्ञियाः पाशा विवता महान्तः।

तेभिर्नो अद्य सवितोत विष्णुर्विश्वे मुञ्चन्तु मरुतः स्वर्काः स्वाहा॥

इदं वरुणाय सवित्रे विष्णवे विश्वेभ्यो देवेभ्यो मरुद्भ्यः स्वर्केभ्यश्च न मम।

ॐ उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं विमध्यमꣳ श्रथाय।

अथा वयमादित्यव्रते तवानागसो अदितये स्याम स्वाहा॥

इदं वरुणायादित्यायादितये न मम।

ॐ प्रजापतये स्वाहा, इदं प्रजापतये न मम।

ॐ अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा, इदमग्नये स्विष्टकृते न मम।

संस्रवप्राशनम्। मार्जनम्। अग्नौ पवित्रप्रतिपत्तिः। प्रणीताविमोकः। ब्रह्मणे पूर्णपात्रदानम्। तत्र सङ्कल्पः—

वटुः—**'अमुकगोत्रः अमुकशर्मा कृतस्य समावर्तनाङ्गहोमकर्मणः साद्गुण्यप्राप्तये अपूर्णपूरणार्थमिदं पूर्णपात्रं प्रजापतिदैवतं यथानामगोत्राय ब्राह्मणाय तुभ्यमहं सम्प्रददे'।**

अग्नि-परिचर्या

ततः अग्नौ पञ्चशुष्कगोमयखण्डानि मन्त्रपूर्वकं क्षिपेत्। तद्यथा मन्त्रः—

ॐ अग्ने सुश्रवः सुश्रवसं मा कुरु।।१।।

ॐ यथा त्वमग्ने सुश्रवः सुश्रवा असि॥२॥

ॐ एवं मा सुश्रवः सौश्रवसं कुरु॥३॥

ॐ यथा त्वमग्ने देवानां यज्ञस्य निधिपः असि॥४॥

ॐ एवमहं मनुष्याणां वेदस्य निधिपो भूयासम् ॥५॥

निर्देश—इसके बाद जल से प्रादक्षिण्यवृत्ति से अग्नि का पर्युक्षण कर निम्नलिखित **'अग्नये समिध.'** मन्त्र से एक-एक करके घृताक्त तीन समिधाओं की अग्नि में आहुति के अनन्तर पुनः उपरिलिखित 'अग्ने सुश्रवः' इत्यादि पाँच मन्त्रों से अग्नि का परिसमूहन एवं पर्युक्षण करके मौन रहते हुए दोनों हाथों को अग्नि में तपाकर मुख पोंछे। तद्यथा—

समिदाधानमन्त्रः—

अग्नये समिधमाहार्षं बृहते जातवेदसे यथा त्वमग्ने समिधा समिध्यस एवमहमायुषा मेधया वर्चसा प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन समिन्धे जीवपुत्रो ममाचार्यो मेधाव्यहमसान्यनिराकरिष्णुर्यशस्वी तेजस्वी ब्रह्मवर्चस्यन्नादो भूयासꣳ स्वाहा॥

अग्निपरिसमूहन-मन्त्राः—

ॐ 'अग्ने सुश्रवः सुश्रवसं मा कुरु'।

ॐ यथा त्वमग्ने सुश्रवः सुश्रवा असि।

ॐ एवं मा सुश्रवः सौश्रवसं कुरु।

ॐ यथा त्वमग्ने देवानां यज्ञस्य निधिपः असि।

ॐ एवमहं मनुष्याणां वेदस्य निधिपो भूयासम्।

मुखप्रोक्षणमन्त्राः—

ॐ तनूपा अग्नेऽसि तन्वं मे पाहि॥१॥

ॐ आयुर्दा अग्नेऽस्यायुर्मे देहि॥२॥

ॐ वर्चोदा अग्नेऽसि वर्चो मे देहि॥३॥

ॐ अग्ने यन्मे तन्वा ऊनं तन्म आपृण॥४॥

ॐ मेधाम्मे देव सविता आदधातु॥५॥

ॐ मेधाम्मे देवी सरस्वती आदधातु॥६॥

ॐ मेधामश्विनौ देवावाधत्तां पुष्करस्त्रजौ॥७॥

अङ्गस्पर्शनमन्त्राः—

'ॐ अङ्गानि च म आप्यायन्ताम्' (इति शिरसः आपादमङ्गानि स्पृशति)।

'ॐ वाक् च म आप्यायताम्' (इति मुखम्)।

'ॐ प्राणश्च म आप्यायताम्' (इति नासारन्ध्रे)।

'ॐ चक्षुश्च म आप्यायताम्' (इति चक्षुषी युगपत्)।

'ॐ श्रोत्रं च म आप्यायताम्' (इति दक्षवामश्रोत्रे)।

'ॐ यशोबलं च म आप्यायताम्' (इति परस्परव्यत्यासेन बाहू युगपत् स्पृशेत्)।

भस्मधारणमन्त्राः—

'ॐ त्र्यायुषं जमदग्नेः' इति ललाटे।

'ॐ कश्यपस्य त्र्यायुषम्' इति ग्रीवायाम्।

'ॐ यद्देवेषु त्र्यायुषम्' इति दक्षिणबाहुमूले।

'ॐ तन्नो अस्तु त्र्यायुषम्' इति हृदि[1]।

निर्देश—इसके अनन्तर ब्रह्मचारी अग्नि एवं गुरु को व्यत्यस्त पाणि से अभिवादन करता है।

अमुकगोत्रोऽमुकप्रवरोऽमुकशाखाध्यायी अमुकशर्माऽहं भो अग्ने! त्वामभिवादये।

पुनः अमुकगोत्रोऽमुकप्रवरोऽमुकशाखाध्यायी अमुकशर्माऽहं भो गुरो! त्वामभिवादये।

आचार्यः—'आयुष्मान् भव सौम्य अमुकशर्मन्'।

अभिषेक-विधिः

निर्देश—पूर्व से दक्षिणोत्तर क्रम से स्थापित आठ कलशों से जल लेकर ब्रह्मचारी मन्त्रपूर्वक अपने शिर पर अभिषेचन करता है। उदङ्मुख बैठकर दक्षिण से एक-एक कलश का जल निकाल कर अभिसिञ्चन करता है।

प्रथमकुम्भाद् जलग्रहणमन्त्रः

ॐ येऽप्स्वन्तरग्नयः प्रविष्टा गोह्य उपगोह्यो मयूखो

---

१. ऊपर लिखे समस्त मन्त्रों का अर्थ उपनयन प्रकरण में दिया गया है।

मनोहाऽस्खलो विरुजस्तनूदघुरिन्द्रिय हा तान्विजहामि यो रोचनस्तमिह गृह्णेमि॥

मन्त्रार्थ—जल में दस प्रकार की अग्नियाँ निवास करती हैं, जिनमें गोह्य, उपगोह्य, मयूख, मनोहर, खल, विरुज, तनु, दूषु इन आठ प्रकार की अग्नियों का परित्याग कर मैं रोचन एवं कल्याण नामक दोनों अग्नियों सहित जल को स्नान करने के लिए ग्रहण करता हूँ।

सिञ्चन-मन्त्रः—

ॐ तेन मामभिषिञ्चामि श्रियै यशसे ब्रह्मणे ब्रह्मवर्चसाय॥ (इति स्वशिरसि अभिषिञ्चेत्)

मन्त्रार्थ—इस जल से लक्ष्मी-लाभ, यशोलाभ, ब्रह्मतेज-लाभ तथा ब्रह्मज्ञान प्राप्त हो, इसलिए मैं आत्मसिञ्चन करता हूँ।

द्वितीयकुम्भात्—**'ॐ येऽप्स्वन्तरग्नयः.'** इस पूर्वोक्त मन्त्र से जल ग्रहण करे।

सिञ्चन-मन्त्रः —

ॐ येन श्रियमकृणुतां येनावमृशताꣳ सुराम्।

येनाक्ष्यावभ्यषिञ्चतो यद्वां तदश्विना यशः॥

मन्त्रार्थ—जिस जल से अश्विनीकुमार लक्ष्मीवान् हुए, जिस जल से मदिरोत्पन्न दोष दूर किये गये और जिस जल से नेत्रों का सिञ्चन किया गया, उसी जल से मैं अपनी आत्मा का सिञ्चन करता हूँ।

तृतीयकुम्भाद् जलग्रहणमन्त्रः—**'ॐ येऽप्स्वन्तरग्नयः.'** (पूर्वोक्त मन्त्र से जल ग्रहण करें)।

अभिषेकमन्त्रः—**ॐ आपो हिष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन। महे रणाय चक्षसे।।** (इति शिरसि सिञ्चेत्)

चतुर्थकुम्भात्—**'ॐ येऽप्स्वन्तरग्नयः' इति मन्त्रेण जलमादाय**

ॐ यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः। उशतीरिव मातरः।। इति मन्त्रेण शिरसि अभिषिञ्चेत्।

पञ्चमकुम्भात्—**'ॐ येऽप्स्वन्तरग्नयः'** इति मन्त्रेण जलमादाय **ॐ तस्मा अरङ्गमामवो यस्य क्षयाय जिन्वथ। आपो जनयथा च नः।।** इति मन्त्रेण अभिषिञ्चेत्।।

ततः षष्ठात्, सप्तमात्, अष्टमाच्च कुम्भात् क्रमेण मन्त्रावृत्त्या **'ॐ येऽप्स्वन्तरग्नयः'** इति अपो गृहीत्वा तूष्णीं स्वशिरसि अभिषिञ्चेत्।

ततो ब्रह्मचारी **'ॐ उदुत्तमम्'** इति मन्त्रं पठन् शिरोमार्गेण मेखलां निस्सारयेत्।

ॐ उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाऽधमं मध्यमꣳ श्रथाय।
अथा व्वयमादित्यव्रते तवानागसो अदितये स्याम स्वाहा।।

निर्देश—उक्त मन्त्र से मेखला को शिरोमार्ग से निकालने के बाद ब्रह्मचारी अपने पलाश-दण्ड को उत्तराग्र भूमि पर रख दे, तथा मृगचर्म को चुपचाप उतार कर अन्य कोई वस्त्र उत्तरीय के रूप में धारण कर दोनों बाहुओं को ऊपर उठाकर सूर्य का उपस्थान करे। तद्यथा मन्त्रः—

ॐ उद्यन् भ्राजभृष्णुरिन्द्रो मरुद्भिस्स्थात्प्रातर्यावभिरस्थात् दशसनिरसि दशसनिं मा कुर्वा विदन्मागमयोद्यन् भ्राजभृष्णुरिन्द्रो मरुद्भिरस्थात् दिवा यावभिरस्थाच्छत सनिरसि शतसनिं मा कुर्वा विदन् मा गमय, उद्यन् भ्राजभृष्णुरिन्द्रो मरुद्भिरस्थात् सायं यावभिरस्थात् सहस्त्रसनिरसि सहस्त्रसनिं मा कुर्वा विदन्मा गमय।।

मन्त्रार्थ—अपने समस्त मरुत् देवताओं के साथ प्रातःकाल उदित होते हुए हे आदित्य! जैसे तुम दस गुने किरणों को धारण करते हो, उसी प्रकार मुझे भी दस गुने तेज से युक्त करो तथा मुझे ब्रह्मचर्य से उत्तीर्ण जानो। इसी प्रकार हे आदित्य! मध्याह्न एवं सायंकाल क्रमशः शत एवं सहस्त्र गुने किरणों से देदीप्यमान होते हो, अतः मुझे भी शत एवं सहस्त्र गुने तेज से युक्त करो, तथा मुझे ब्रह्मचर्य से उत्तीर्ण जानो।

निर्देश—सूर्योपस्थान के बाद ब्रह्मचारी दधि अथवा तिल खाकर शिखा के अतिरिक्त समस्त केश का मुण्डन कराकर, नखादि कटाकर द्वादश अंगुल परिमित औदुम्बर काष्ठ का दन्तधावन करे। तत्र मन्त्रः—

ॐ अन्नाद्याय व्यूहध्वꣳ सोमो राजाऽयमागमत्।
स मे मुखं प्रमाक्ष्यते यशसा च भगेन च॥

मन्त्रार्थ—हे औदुम्बर, तुम्हें ग्रहण कर मैंने तुम्हारे अधिपति चन्द्र को मानो ग्रहण कर लिया है, अब वह ओषधियों का स्वामी राजा सोम मेरे अन्न खाने योग्य मुख को यश एवं ऐश्वर्य से प्रच्छालित कर देदीप्यमान कर दे।

निर्देश—दन्तधावन कर ब्रह्मचारी बारह बार जल से कुल्ला कर सुगन्धित तेल से युक्त बटन आदि से शरीरोद्वर्तन कर शीतोष्ण जल से स्नान करता है तथा नूतन वस्त्रादि पहनकर चन्दनादि का अनुलेपन कर नासिका, नेत्र और श्रोत्र का मन्त्रपूर्वक स्पर्श करता है, तद्यथा—

'ॐ प्राणापानौ मे तर्पय' इति नासिके युगपत्।

'ॐ चक्षुर्मे तर्पय' इति चक्षुषी युगपत्।

'ॐ श्रोत्रं मे तर्पय' इति श्रोत्रे युगपत् स्पृशति।

तदुपरान्त ब्रह्मचारी दोनों हाथों को प्रच्छालित कर अपसव्य होकर प्राङ्मुख रहते हुए दक्षिण दिशा में भूमि पर पितरों के निमित्त अवनेजन (जलाञ्जलि) छोड़े, निम्न श्रुतिवाक्य से—

'ॐ पितरः शुन्धध्वम्'।

मन्त्रार्थ—हे पितृगण! मुझे शुद्ध करो। तदनन्तर सव्य होकर आचमन करे, चन्दन से तिलक कर सविता देवता की निम्न मन्त्र से प्रार्थना करे—

ॐ सुचक्षा अहमक्षीभ्यां भूयासं सुवर्चा मुखेन।
सुश्रुतकर्णाभ्यां भूयासम्॥

मन्त्रार्थ—मैं सविता देवता के प्रसाद से आँखों से सुन्दर दिखूँ तथा कान्तिमान मुख एवं सुनने योग्य कर्णवाला हो जाऊँ।

वस्त्रालङ्कारादि-धारणविधिः

उसके बाद नया वस्त्र ब्रह्मचारी पहनता है तथा निम्न मन्त्र बोलता है—

ॐ परिधास्यै यशोधास्यै दीर्घायुत्वाय जरदष्टिरस्मि। शतं च जीवामि शरदः पुरूची रायस्पोषं संव्ययिष्ये॥

मन्त्रार्थ—मैं दीर्घायु के लिए तथा कीर्ति प्राप्त करने के लिए यह वस्त्र पहनता हूँ, मैं इस वस्त्र को धारण करने से सौ वर्ष तक जीवित रहकर अत्यन्त तेजस्वी एवं धनवान् बनूँगा।

निर्देश—तदुपरान्त दो बार आचमन कर ब्रह्मचारी **'ॐ यज्ञोपवीतं परमं पवित्रम्'** इत्यादि मन्त्र से द्वितीय यज्ञोपवीत धारण कर पुनः आचमन कर उत्तरीय वस्त्र मन्त्र बोलते हुए धारण करता है। तद्यथा—

ॐ यशसा मा द्यावा पृथिवी यशसेन्द्रा बृहस्पती।
यशो भगश्च माऽविदद् यशा मा प्रतिपद्यताम्॥

मन्त्रार्थ—आकाश और पृथिवी ये दोनों मुझे यश से परिपूर्ण करें, इन्द्र और बृहस्पति मुझे यश प्रदान करें, जिससे मुझे यश और सौभाग्य प्राप्त हो। पुनः आचमन कर विद्याव्रतस्नातक के रूप में ब्रह्मचारी गृहस्थधर्मानुकूल विभिन्न अलंकरणादि धारण करता है।

पुष्पमाला का ग्रहण एवं धारण मन्त्र—

ॐ या आहरज्जमदग्निः श्रद्धायै मेधायै कामायेन्द्रियाय। ता अहं प्रतिगृह्णामि यशसा च भगेन च॥

मन्त्रार्थ—जिस पुष्पमाला को महर्षि जमदग्नि ने अपनी अभीष्ट सिद्धि के लिए धारण किया था, उसी पुष्पमाला को यश और सौभाग्य

की प्राप्ति के लिए तथा अपनी चक्षु आदि इन्द्रियों की रक्षा के लिए ग्रहण करता हूँ।

ॐ यद्यशोऽप्सरसामिन्द्रश्चकार विपुलं पृथु।
तेन सङ्ग्रथिताः सुमनस आबध्नामि यशोमयि॥

मन्त्रार्थ—उर्वशी आदि अप्सरायें जिन मालाओं को धारण करने से अत्यन्त सुन्दर यशवाली हो जाती हैं, उन्हीं गुँथी हुई पुष्पमालाओं को मैं यश-प्राप्ति के लिए धारण करता हूँ।

इसके बाद पगड़ी धारण मन्त्र—

ॐ युवा सुवासाः परिवीत आगात स उ श्रेयान् भवति जायमानः।
तं धीरासः कवय उन्नयन्ति स्वाध्यो मनसा देवयन्तः॥

मन्त्रार्थ—जो युवक सुन्दर वस्त्र अपने शिर पर उष्णीष के रूप में धारण करता है, वह सभी पुरुषों में श्रेष्ठ कहा जाता है और श्रेष्ठ वस्त्र को धारण करने वाला सुन्दर पुरुष विद्वानों के द्वारा प्रशंसनीय होता है तथा सभी मनुष्य उसकी प्रशंसा हृदय से करते हैं।

कर्णालङ्कार धारण मन्त्र—

ॐ अलङ्करणमसि भूयोऽलङ्करणं भूयात्।

मन्त्रार्थ—हे कर्णकुण्डल! शोभा को बढ़ाने वाले हो, अतः मेरी शोभा को बढ़ाओ। (पहले दक्षिण कर्ण में, फिर वाम में कुण्डल पहने)।

अञ्जन धारण मन्त्र—

ॐ वृत्रस्यासि कनीनकश्चक्षुर्दा असि चक्षुर्मे देहि॥

मन्त्रार्थ—हे अञ्जन! तुम वृत्रासुर के नेत्र के तारा हो, तुम नेत्र की ज्योति को बढ़ाने वाले हो, अतः मेरे भी नेत्र की ज्योति को बढ़ाओ। (दक्षिण-वाम क्रम से लगाये)।

मन्त्र से दर्पण में अपने मुख को देखे—

'ॐ रोचिष्णुरसि'।

मन्त्रार्थ—हे दर्पण! तुम प्रकाश स्वभाव वाले हो, अतः मुझे भी प्रकाश दो।

निम्न मन्त्र से छत्र (छाता) ग्रहण करे—

ॐ बृहस्पतेश्छदिरसि पाप्मनोमामन्तर्धेहि तेजसो यशसो माऽन्तर्धेहि॥

मन्त्रार्थ—हे छत्र! तुम बृहस्पति के आच्छादक हो, उन्हें समस्त पापों से बचाते हो, अतः तुम मुझे भी पापरूपी आतप से बचाओ।

ततः मन्त्र से नवीन जूता पहने—

ॐ प्रतिष्ठे स्थो विश्वतो मा पातम्।

मन्त्रार्थ—हे उपानह! तुम चलने में कभी थकते नहीं हो, निरन्तर गतिमान् होने के कारण ही तुम्हारी प्रतिष्ठा है, अतः तुम हमारे समस्त गतिरोधों से अर्थात् मार्ग के कण्टक आदि से मेरी रक्षा करो।

ततः नवीन बाँस के दण्डे को ग्रहण करे—

ॐ विश्वाभ्यो मा नाष्ट्राभ्यस्परि पाहि सर्वतः।

मन्त्रार्थ—हे वेणु-दण्ड! जो जीव काटने तथा डँसने वाले हैं तथा जो पशु खुर, सींग आदि से मारने वाले हैं, उन सभी से सभी जगह मेरी रक्षा करना।

निर्देश—समावर्तन-संस्कार में स्वस्ति-पुण्याहवाचनादि से ब्राह्मण को पूर्णपात्र दान पर्यन्त कर्म, पिता अथवा आचार्य करता है तथा आठों कुम्भों के अभिषेक से लेकर वेणु-दण्ड धारण पर्यन्त कर्म ब्रह्मचारी स्वयं मन्त्रपूर्वक करता है। इसके उपरान्त ब्रह्मचारी अपने आचार्य की विधिवत् पूजा कर उन्हें दक्षिणा के रूप में द्रव्यादि के अतिरिक्त गो अथवा तन्निष्क्रय द्रव्य प्रदान करे, तदुपरान्त आचार्य के मुख से स्नातक, गृहस्थ जीवन के लिए पालनीय नियमों को श्रद्धापूर्वक सुने तथा आचार्य को एतदर्थ गोदान का संकल्प करे। तद्यथा—

'अमुकगोत्रः अमुकशर्मा मम स्नातकत्वसिद्ध्ये इदं गोनिष्क्रयद्रव्यमाचार्याय दातुमहमुत्सृजे' इति दद्यात्।

स्नातक के नियम

स्नातकस्य यमान् वक्ष्यामः (पा.गृ.सू. २.७)

१. **कामात् इतरोऽप्यधिक्रियते**। (द्विजाति के अतिरिक्त भी अपनी इच्छा से अपने कल्याणार्थ इन नियमों का पालन कर सकते हैं)।

२. **नृत्यगीतवादित्राणि न कुर्यात्, न च गच्छेत्**। (नाचने, गाने तथा बजाने का काम न स्वयं करे और न ही दूसरों द्वारा अनुष्ठित ऐसे कार्यों में सम्मिलित हो)।

३. **क्षेमे रात्रौ ग्रामान्तरं न गच्छेत्, न च धावेत्**। (यदि सब कुछ ठीक हो, तो रात्रि में दूसरे गाँव में न जाय और न अनावश्यक दौड़े)।

४. **उदपानाऽवेक्षण-वृक्षारोहण-फलप्रपतन-सन्धिसर्पण-विवृत-स्नान-विषमलङ्घन-शुष्कवदन-सन्ध्याऽऽदित्यप्रेक्षण-भैक्षणानि न कुर्यात्**। (कुएँ में न झाँके, पेड़ पर न चढ़े, कच्चे फल तोड़कर न गिराये, सन्धि वेला में यात्रा न करे, नग्न वदन स्नान न करे, ऊबड़-खाबड़ भूमि को न लाँघे, गन्दी बातें न बोले, सन्ध्या वेला में सूर्यदर्शन न करे, समावर्तन-संस्कार के बाद भिक्षाटन न करे)।

५. **वर्षत्यप्रावृतो व्रजेत् 'ॐ अयं मे वज्रः पाप्मानमपहनत्'** इति मन्त्रं पठन् गच्छेत्। (यदि वर्षा हो रही हो, तो **'अयं मे वज्रः'** मन्त्र पढ़ता हुआ विना छाता लगाये ही चले)।

मन्त्रार्थ—यह रविरश्मिसंस्कृत जलकणरूपी वज्र मेरे पापों को नष्ट कर दे।

६. **अप्स्वात्मानं नावेक्षेत**। (जल में अपनी परछाईं न देखे)।

७. **अजातलोम्नीं विपुसीं षण्ढं च नोपहसेत्**। (जिस स्त्री की देह में रोम न हो तथा मुँह में मूँछ-दाढ़ी हो और जो पुरुष नपुंसक हो, उसका उपहास न करे)।

८. **गर्भिणीं विजन्येति ब्रूयात्**। (गर्भिणी स्त्री को गर्भिणी न कह-कर विजन्या-कल्याणप्रसवा कहे)।

९. **सकुलमिति नकुलम्**। (निर्वंश पुरुष को न कुल अथवा निर्वंश न कहकर सकुल-सवंश कहे)।

१०. **भगालमिति कपालम्**। (कपाल को भगाल शब्द से कहे)।

११. **मणिधनुरितीन्द्रधनुः**। (इन्द्रधनुष को मणिधनुष शब्द से कहे)।

१२. **गां धयन्तीं परस्मै नाचक्षीत**। (अपने वत्स को दूध पिलाती हुई गाय के बारे में दूसरे से न कहे)।

१३. **उर्वरायामनन्तर्हितायां भूमावुत्सर्पंस्तिष्ठन्न मूत्रपुरीषे कुर्यात्**। (उर्वर भूमि या वंजर भूमि पर खड़े होकर या कूद-कूद कर मल-मूत्र का त्याग न करे)।

१४. **स्वयं प्रशीर्णेन काष्ठेन गुदं प्रमृजीत**। (अपनेआप पेड़ की डाल से टूट कर गिरी हुई लकड़ी के टुकड़े से गुप्ताङ्ग का परिमार्जन करे)।

१५. **विकृतं वासो नाच्छादयीत**। (गन्दे, फटे और अनुपयुक्त वस्त्र न पहने)।

१६. **दृढव्रतो वधत्रः स्यात्**। (निष्ठापूर्वक अपने व्रत-नियम का पालन करे तथा हिंसा से अपनी तथा दूसरों की भी रक्षा करे)।

१७. **सर्वतः आत्मानं गोपायेत्**। (सर्वतोभावेन अपनी रक्षा करे)।

१८. **सर्वेषां मित्रमिव स्यात्**। (सभी के साथ मित्रवत् व्यवहार करे)।

१९. **तिस्रो रात्रीर्व्रतं चरेत्।** (स्नातक को समावर्तन-संस्कार से तीन दिन तक व्रत रखना चाहिए)।

२०. **अमांसाशी, अमृन्मयपायी स्यात्।** (मांस न खाये तथा मिट्टी के बर्तन में पानी न पीये)।

२१. **स्त्रीशूद्रशवकृष्णशकुनिशुनां चादर्शनमसम्भाषा च तैः।** (स्त्री, शूद्र, मुर्दा, कौवा और कुत्ते को न देखे, न इनके साथ बात करे)।

२२. **शवशूद्रसूतकान्नानि च नाद्यात्।** (मरणोपरान्त उनके गृह-सम्बन्धियों का, शूद्र का तथा जननाशौच वाले लोगों का अन्न नहीं खाना चाहिए)।

२३. **मूत्रपुरीषे ष्ठीवनं चातपे न कुर्यात्।** (धूप में मल-मूत्र का त्याग न करे और न थूके)।

२४. **सूर्याच्चात्मानं नान्तर्दधीत।** (सूर्य के प्रकाश से अपने को अलग न करे)।

२५. **तप्तेनोदकार्थान् कुर्वीत।** (यथासम्भव गर्म जल से उदकसाध्य शौच, आचमनादि क्रियायें करे)।

२६. **अवज्योत्य रात्रौ भोजनम्।** (रात्रि में दीपक जलाकर ही भोजन करे)।

२७. **सत्यवदनमेव वा।** (अथवा केवल सदा सत्य बोले)।

निर्देश—आचारात् कतिपय आचार्य पूर्णाहुति करते हैं; परन्तु वह ठीक नहीं है; क्योंकि—

विवाहे व्रतबन्धे च शालायां वास्तुकर्मणि।
गर्भाधानादिसंस्कारे पूर्णाहुतिं न कारयेत्॥

इस वचन से यज्ञोपवीतादि संस्कारों में पूर्णाहुति का निषेध किया गया है। स्नातक नियमों के उपदेश के उपरान्त संस्कार कराने वाले

आचार्य को दक्षिणा तथा ब्राह्मण-भोजन संकल्प एवं भूयसी दक्षिणा का संकल्प कर अग्न्यादि देवताओं का विसर्जन करे। तद्यथा—

अमुकगोत्रः अमुकशर्मा कृतस्य समावर्तनकर्मणः साङ्गतासिद्ध्यर्थं कर्मकारयित्रे मनसोद्दिष्टां दक्षिणां तुभ्यमहं सम्प्रददे' इति दक्षिणां दद्यात्। पुनः **अमुकगोत्रः अमुकशर्मा कृतस्य समावर्तनकर्मणः साद्गुण्यार्थं यथोपपन्नेन सिद्धान्नेन दशसंख्याकान् ब्राह्मणान् भोजयिष्ये।** ततः **उपनयन-वेदारम्भ-समावर्तनकर्मसु न्यूनातिरिक्तदोषपरिहारार्थम् इमां भूयसीं दक्षिणां नानानामगोत्रेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो दीनानाथेभ्यो विभज्य दातुमहमुत्सृजे।** ततोऽग्नेर्नवग्रहादीनाञ्च विसर्जनं कुर्यात्। तद्यथा—

यान्तु देवगणाः सर्वे पूजामादाय मामकीम्।
इष्टकामसमृद्ध्यर्थं पुनरागमनाय च॥

गच्छ गच्छ सुरश्रेष्ठ स्वस्थाने परमेश्वर।
यत्र ब्रह्मादयो देवास्तत्र गच्छ हुताशन॥

प्रमादात् कुर्वतां कर्म प्रच्यवेताऽध्वरेषु यत्।
स्मरणादेव तद्विष्णोः सम्पूर्णं स्यादिति श्रुतिः॥

यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या तपोयज्ञक्रियादिषु।
न्यूनं सम्पूर्णतां याति सद्यो वन्दे तमच्युतम्॥

ॐ विष्णवे नमः, ॐ विष्णवे नमः, ॐ विष्णवे नमः।

॥ इति समावर्तनसंस्कारप्रयोगः॥

॥ इति डॉ. राममूर्तिचतुर्वेदिकृतं (हिन्दीमन्त्रार्थसहितं) यज्ञोपवीत-वेदारम्भ-समावर्तनपरिशीलनं परिपूर्णम् ॥

●

परिशिष्ट - भाग:

यज्ञोपवीत-वेदारम्भ-समावर्तन संस्कारों का पृथक्-पृथक् संकल्प-वाक्य बोलना चाहिए। यदि एक ही साथ तीनों संस्कार करना हो, तो भी सभी के पूर्वाङ्ग में विहित पञ्चाङ्ग-पूजन तथा ग्रहयाग का पृथक् से संकल्प कर लेना चाहिए।

सङ्कल्प - वाक्य - योजना

१. उपनयन में : 'पिता आचार्यो वा **अस्य कुमारस्य द्विजत्वसिद्ध्या वेदाध्ययनाधिकारसिद्धिद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीतये उपनयनसंस्कारं करिष्ये'**।

२. वेदारम्भ में : पिता आचार्यो वा **अस्य कुमारस्य श्रौतस्मार्तकर्मानुष्ठानाधिकारब्रह्मवर्चससिद्धिद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं वेदारम्भसंस्कारं करिष्ये'**।

३. समावर्तन में : 'पिता आचार्यो वा **अस्य कुमारस्य गृहस्थाश्रमार्हतासिद्धिद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं समावर्तनसंस्कारं करिष्ये'**।

४. पञ्चाङ्ग-पूजन में : **'अस्य कुमारस्य करिष्यमाणोपनयन-वेदारम्भ-समावर्तनकर्मणां पूर्वाङ्गत्वेन विहितं तन्त्रेण स्वस्तिपुण्याहवाचनं मातृकापूजनं वसोर्धारापूजनम् आयुष्यमन्त्रजपम् आभ्युदयिकश्राद्धं च करिष्ये'**।

५. ग्रहयाग में : **'ममास्य कुमारस्य दशाविदशान्तर्दशास्थितादित्यादिग्रहसूचितदुष्टफलोपशान्तिपूर्वकं दीर्घायुरारोग्यहर्षविजयप्राप्तये श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं च उपनयनवेदारम्भसमावर्तनकर्मनिमित्तकं ग्रहयागं करिष्ये'**।

६. सर्वत्र : **'तत्रादौ निर्विघ्नतासिद्ध्यर्थं गणेशाम्बिकयो: पूजनं च करिष्ये'**।

●

यज्ञीय-पारिभाषिक-शब्द

१. **इतरथावृत्ति**—ईशानकोण से प्रादक्षिण्यवृति से जल या अंगार या किसी अन्य पदार्थ द्वारा ईशानकोण तक भ्रमण कराकर पुनः अप्रादक्षिण्य वृत्ति से ईशान से ईशान तक की गयी आवृत्ति को 'इतरथावृत्ति' कहते हैं।

२. **अन्वारब्ध**—हवनकर्ता के दक्षिण बाहु का स्पर्श कुश या सूत्र द्वारा अग्नि के दक्षिण में उपस्थित ब्रह्मा से किये जाने वाले कार्य को 'अन्वारब्ध' कहते हैं।

३. **आघारौ**—अग्नि में सर्वप्रथम दी जाने वाली दो आहुतियों को 'आघारौ' कहा जाता है, अग्निकुण्ड या स्थण्डिल में ईशान से नैऋत्यकोण तक तथा अग्नि से वायव्यकोण तक अविच्छिन्न घृतच्छरणपूर्वक प्रजापति और इन्द्र को आहुति दी जाती है।

ॐ प्रजापतये स्वाहा, इदं प्रजापतये न मम।

ॐ इन्द्राय स्वाहा, इदं इन्द्राय न मम।

४. **आज्यभागौ**—आघाराहुति के तुरन्त बाद समिद्धतम अग्नि में अग्नि और सोम के लिए दी जाने वाली दो आहुतियों को 'आज्यभागौ' कहा जाता है, तद्यथा—

ॐ अग्नये स्वाहा, इदमग्नये न मम।

ॐ सोमाय स्वाहा, इदं सोमाय न मम।

५. **संस्रवप्राशन**—देवताओं को समर्पित की गयी घृत की आहुति का शेष भाग **'न मम'** कहते हुए प्रोक्षणी पात्र में डाला जाता है, जिसे होमान्त में आचार्यादि द्वारा ग्रहण किया जाता है, इसी कर्मविशेष का नाम 'संस्रवप्राशन' है।

६. **आपोशान विधि**—भोजन के पहले की जाने वाली आचमनादि विधि को 'आपोशान विधि' कहते हैं, जो अधोलिखित रूप में करनी चाहिए—

'जब द्विज भोजन के लिए बैठे, तब सबसे पहले वह अपने हाथ में जल लेकर भोजन-पात्र के चारों तरफ गिरावे, तथा 'अमृतोपस्तरणमसि' इस मन्त्र से आचमन कर ले। तत्पश्चात् अपने मुख में अग्नि की कल्पना कर प्रथमतः दो आहुति **'ॐ भूपतये स्वाहा' 'ॐ भुवनपतये स्वाहा'** इस मन्त्र द्वारा दे, पुनः **'ॐ प्राणाय स्वाहा, ॐ अपानाय स्वाहा, ॐ व्यानाय स्वाहा, ॐ समानाय स्वाहा, ॐ उदानाय स्वाहा'** इन पाँच मन्त्रों को क्रमशः एक-एक बार कहकर एक-एक ग्रास भोजन करे। तत्पश्चात् पूर्णरूप से भोजन कर लेने के उपरान्त हाथ में जल लेकर **'ॐ अमृतापिधानमसि'** यह मन्त्र बोलकर आचमन करे। भोजन के समय मौन रहे तथा अन्तिम आचमन कर लेने के बाद बोले। यह विधि यज्ञोपवीत-संस्कार के बाद प्रत्येक द्विज को प्रतिदिन भोजन के समय करनी चाहिए।

७. **पञ्चभू-संस्कार**—यज्ञानुष्ठान की सम्पन्नता एवं पूर्णता के लिए हवन का विधान सभी धार्मिक कृत्यों में किया जाता है। हवन-कार्य के लिए कुण्डस्थ भूमि या स्थण्डिल वेदी की भूमि पर पाँच प्रकार से संस्कार करने के उपरान्त अग्नि की स्थापना की जाती है। भूमि पर पञ्चसंस्कार किये जाने के कारण इसे पञ्चभू-संस्कार कहते हैं। इसकी विधि का निर्देश उपनयन-संस्कार के पृष्ठ २४ पर दिया गया है।

८. **अग्नौ पवित्रप्रतिपत्तिः**—हवन-कार्य के पूर्वाङ्ग के रूप में **'कुशकण्डिका'** का विधान किया गया है, जिसमें दो कुशाओं की ग्रन्थि बनाकर पवित्री बनायी जाती है, जिसे यथाविधि प्रणीता पात्र एवं प्रोक्षणी पात्र में रखा जाता है, हवन-कार्य पूर्ण हो जाने पर इसकी ग्रन्थि को खोल दिया जाता है तथा उसे अग्नि में डाल दिया

जाता है, इसी कार्यविशेष को **'अग्नौ पवित्रप्रतिपत्तिः'** नाम से कहा जाता है।

९. **प्रणीताविमोकः**—वारणकाष्ठ-निर्मित चौकोर आकार वाले जलाधार पात्रविशेष को प्रणीता-पात्र कहते हैं। हवन के समय पवित्री इसी पात्र में रहती है, हवन के पूर्ण हो जाने पर इस पात्र को भूमि पर उलट दिया जाता है, जिसे **'प्रणीताविमोक'** शब्द से कहा जाता है।

१०. **पूर्णपात्र**—हवन-कार्य की विधि का निरीक्षण एवं यथाविधि हवन-कार्य की सम्पन्नता के लिए **'ब्रह्मा'** नामक ऋत्विज् का वरण किया जाता है, हवन पूर्ण हो जाने पर उसे **'पूर्णपात्र'** का दान किया जाता है। किसी पात्रविशेष में तण्डुल भर कर उसे फल, दक्षिणा आदि से पूर्ण कर दिया जाता है, अतः उसे **पूर्णपात्र** कहते हैं।

११. **समिदाधान**—यज्ञोपवीत-संस्कार के अनन्तर समावर्तन-संस्कार की पूर्णता तक ब्रह्मचारी बालक को प्रतिदिन सायं, प्रातः अग्नि में विहित यज्ञीय काष्ठ एवं शुष्क गोमयखण्ड से पाँच आहुति देनी होती है, इसी कर्मविशेष को **'समिदाधान'** कहा जाता है।

१२. **प्रादक्षिण्यवृत्ति**—देवसम्बन्धी धार्मिक कृत्यों में किसी देव, स्थान, पात्र तथा अग्निकुण्ड की परिक्रमा अपने से दक्षिण भाग से प्रारम्भ की जाती है, इसी मण्डलाकृति गमन को प्रादक्षिण्यवृत्ति कहते हैं। पितरों से सम्बन्धित श्राद्धादि कृत्यों में यही कार्य अप्रादक्षिण्यवृत्ति से किया जाता है।

१३. **पर्युक्षण**—यज्ञीय कार्यों में प्रणीता अथवा प्रोक्षणी के जल को अग्नि के चारो तरफ प्रादक्षिण्यवृत्ति से गिराया जाता है, चारों तरफ मण्डलाकृति में गिराये जाने के कारण इस कार्यविशेष को **'पर्युक्षण'** शब्द से कहा जाता है।

१४. **अवोक्षण**—यज्ञीय जलविशेष को यथाविधि केवल नीचे की तरफ गिराये जाने के लिए **'अवोक्षण'** शब्द का प्रयोग किया जाता है।

१५. **उद्दिङ्गन**—प्रणीता अथवा प्रोक्षणीपात्र में स्थित जल को संस्कारार्थ ऊपर की ओर उछालने की क्रिया को **'उद्दिङ्गन'** कहा जाता है।

१६. **प्रोक्षण**—मन्त्रपूत जल से समस्त आसादित वस्तुओं को पवित्र करने के लिए उनके ऊपर जल-सिञ्चन किया जाता है, जिसे **'प्रोक्षण'** कहा जाता है।

१७. **परिसमूहन**—यज्ञोपवीत-संस्कार के उपरान्त ब्रह्मचारी अग्नि में समिदाधान करता है, तदनन्तर दोनों हाथों से अग्नि के ताप को अपने सर्वाङ्ग में धारण करता है। मन्त्रपूर्वक सभी अङ्गों का स्पर्श करता हुआ ब्रह्मचारी अग्नि से तेज एवं ब्रह्मवर्चस की कामना करता है, इसी कर्मविशेष को **'परिसमूहन'** कहा गया है।

१८. **अभिषेचन**—मन्त्राभिषिक्त जल को शिर के ऊपर गिराये जाने वाले कर्म को **'अभिषेचन'** कहा जाता है।

१९. **अवनेजन**—पितरों के निमित्त दिये जाने वाले अर्घ्यविशेष को **'अवनेजन'** कहा जाता है।

२०. **कुशकण्डिका**—अग्निस्थापन के बाद तथा हवन प्रारम्भ के पहले कुशाओं के द्वारा किये जाने वाले विभिन्न कार्यों को **'कुशकण्डिका'** नाम से कहा जाता है।

यज्ञोपवीत-संस्कार में आवश्यक सामग्री

यज्ञोपवीत
गंगाजल—एक कलश
पञ्चामृत—मधु, गोघृत, गोदुग्ध, गोदधि, शर्करा
शहद
रोली
मौली
धूपबत्ती
कपूर
लौंग
अबीर-गुलाल-अभ्रक
सिन्दूर
रूई
पान
सुपारी
चावल—५ किलो
पेड़ा—१ किलो
बतासा—१ पाव
ऋतुफल २ दर्जन
इलायची छोटी
पीली सरसो
हल्दी-चूर्ण
पुष्पमाला
विभिन्न पुष्प
इत्र
बिल्वपत्र
कुशा
नारियल जलदार-५
वस्त्र—पूजा हेतु (धोती, उत्तरीय)
नारियल गोला-२
पत्तल-१५
पुरवा-१५
सकोरा-१५
सप्तमृत्तिका
सर्वौषधि
आम्रपल्लव
पञ्चपल्लव (आम्र, गूलर, पीपल, पाकड़, बरगद)
ताम्र-कलश-१
कमण्डलु-१
कटोरा काँसे का—१
पूर्णपात्र-३
आठ कुम्भ
थाली-१
कटोरी-४
काँसे की कटोरी-१
वरण सामग्री
(ऋत्विजों की संख्यानुसार)
धोती
उत्तरीय
जलपात्र
पञ्चपात्र

यज्ञोपवीत
माला (रुद्राक्ष)
कुशासन
यज्ञपात्र
गायत्री प्रतिमा (सुवर्ण)
सुवर्ण-शलाका
सुवर्ण-खण्ड
दन्तधावन—गूलर की
तिल
नवग्रह समिधा
बालू अथवा मिट्टी
पलाश की लकड़ी
आम्र की लकड़ी
शुष्क गोमयखण्ड
माचिस
धमनी
काष्ठपीठ-३
काष्ठ की चौकी-१
केले का स्तम्भ-४
अशोक-पल्लव तोरणमाला
वस्त्र (सफेद, लाल, पीला—प्रत्येक २ मीटर)
पलाश-दण्ड (ब्राह्मण)
बिल्व-दण्ड (क्षत्रिय)
औदुम्बर-दण्ड (वैश्य)
मूँज की मेखला
मृगचर्म
लँगोटी-कौपीन (माणवक)
भिक्षाचर्य थाली
भिक्षाचर्य झोली
पाटी काष्ठ की
स्नातक के वस्त्र एवं आभूषण
टोपी (उष्णीष)
छाता
छड़ी
जूता
काजल
शीशा
पुष्पमाला (विशिष्ट)
सुगन्धित इत्र
दीक्षा वस्त्र (आवरण के लिए)
दक्षिणा
भूयसी
यज्ञपात्र में—स्रुवा, प्रोक्षणी, प्रणीता, स्फय, कुशासन (स्नातक)

सम्पूर्णानन्द-संस्कृत-विश्वविद्यालयः
श्रुतम् मे गोपाय